वदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनः स एवार्थः [किं किं जानाति] उपदिश्यते ॥

फिर अगले मन्त्र में उक्त अर्थ [क्या क्या जानता है] का ही प्रकाश किया है ॥ **अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वां अभि पश्यति ।**

कृतानि या च कर्त्वा ॥ ऋ० १ । २५ । ११

पदार्थः—(अतः) पूर्वोक्तात्कारणात् (विश्वानि) (सर्वाणि) (अद्भुता) आश्चर्यरूपाणि (चिकित्वान्) केतयति जानातीति चिकित्वान् (अभि) सर्वतः (पश्यति) प्रक्षेते (कृतानि) अनुष्ठितानि (या) यानि (च) समुच्चये (कर्त्वा) कर्त्तव्यानि ।

अन्वयः—यतो यश्चिकित्वान् वरुणो धार्मिकोऽखिलविद्यो न्यायकारी मनुष्यो या यानि विश्वानि सर्वाणि कृतानि यानि च कर्त्वा, कर्तव्यान्यद्भुतानि कर्माण्यभि-पश्यत्यतः म न्यायाधीशो भवितुं योग्यो जायते ॥

भावार्थः—यथेश्वरः सर्वत्राभिव्याप्तः सर्वशक्तिमान् सन् सृष्टिरचनादीन्याश्चर्यरूपाणि कृत्वा वस्तूनि विधाय जीवानां त्रिकालस्थानि कर्माणि च विदित्वैतेभ्यस्तत्तकर्माश्रितंफल दातुमर्हति । एवं यो विद्वान् मनुष्यो भूतपूर्वाणां विदुषां कर्माणि विदित्वाऽनुष्ठातव्यानि कर्माण्येव कर्त्तुमुद्युक्तं स एव सर्वाभिद्रष्टा सन् सर्वोपकारकाण्यनुत्तमानि कर्माणि कृत्वाः सर्वेषां न्यायं कर्त्तुं शक्नोतीति ॥

भावार्थः—जिम कारण जो (चिकित्वान्) सब को चेताने वाला धार्मिक सकल विद्याओं को जानने न्याय करने वाला मनुष्य (या) जो (विश्वानि) सब (कृतानि) अपने किये हुए (च) और (कर्त्वा) जो-जो आगे करने योग्य कर्मों और (अद्भुतानि) आश्चर्य रूप वस्तुओ को (अभिपश्यति) सब प्रकार से देखता है (अतः) इसी कारण वह न्यायाधीश होने को ममर्थ होना है ॥

भाषाभावार्थः—जिस प्रकार ईश्वर मब जगह व्याप्त और शक्तिमान् होने से मृष्टि रचनादिरूपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जान कर इनको उन-उन कर्मों के अनुसार फल देने के योग्य है । इमी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहिले हो गये उन के कर्मों और आगे अनुष्ठान करने योग्य कर्मों को करने में युक्त होता है वही मब को देखता हुआ सब के उपकार करने वाले उत्तम से उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने के योग्य होता है । –(**ऋषि दयानन्द का भाष्य**)

सम्पादकीय

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व वेदे ॥

विनय प्रकाश

ऋषि दयानन्द के अपने शब्द बड़ी सरल संस्कृत और आर्य भाषा में लिखे हैं, जिस से सामान्य पढ़े सज्जन भी पूरा लाभ उठा सकें। साथ ही इन शब्दों में धात्वर्थ को आधार मान कर बड़े गम्भीर अर्थ भी प्रकाशित किये गये हैं, जिन में विद्वान् भी पूरा विचार कर सकें। ऋषि वेदमन्त्रार्थद्रष्टा, पूर्णयोगी, महावैज्ञानिक आप्त पुरुष थे। ऋषि के सभी ग्रन्थों का स्वाध्याय करने वाले महानुभावों को यह बात विदित ही है। ऋषि के भावों का अधिक से अधिक प्रचार किया जा सके, इसीलिये आर्यमर्यादा के इस विशेषाङ्क में स्वमन्तव्यामन्तव्य, आर्योद्देश्यरत्नमाला और आर्यसमाज के नियमों का प्रकाशन किया है। इन पर यत्रतत्र मैंने अपनी अल्पमति के अनुसार टिप्पणियां भी लिख दी हैं। साथ ही आर्य जगत् के प्रसिद्ध तीन विद्वानों ने भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार स्वमन्तव्यामन्तव्य के किन्हीं मन्तव्यों पर टिप्पणियां भेजकर हमें कृतार्थ किया है। हम ने इन टिप्पणियों को भी उनके नामों सहित पृथक्-पृथक् रूप में प्रकाशित कर दिया है। इन महानुभावों के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं। हमें आशा है, स्वाध्यायशील सज्जन इन टिप्पणियों से भी पूरा लाभ उठा सकेंगे। हमारा यत्न कैसा है—यह कहना हमारा काम नहीं। सुधीजन स्वयं जान सकेंगे। सभापुस्तकालयाध्यक्ष श्री जगन्नाथजी बी० ए० एल० बी० सिद्धान्त शास्त्री की शुभ प्रेरणा का यह प्रयास है।

—विनयावनत—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

फाल्गुन अमावस्या — सहसम्पादक आर्यमर्य्यादा, नई दिल्ली।

२०२५ वि०

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त[1] अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिसको आप्त[2] अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता।

---

(१) सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ॥ न्याय० १-१-२८ ॥ जिस विषय का किसी भी शास्त्र में विरोध न हो उसको अपने शास्त्र में स्वीकार करना "सर्वतन्त्रसिद्धान्त" कहा जाता है। जैसे सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य व्यवहार करना सभी दर्शनों, तन्त्रों, मतों और सम्प्रदायों में तीनों कालों में एक समान ठीक माना जाता है, अतः "सत्य" सर्वतन्त्र—सार्वजनिकधर्म—नित्यधर्म—सनातनधर्म—वैदिकधर्म कहा जाता है। अर्थात् इस सिद्धान्त में किसी भी निष्पक्ष विद्वान् का मतभेद नहीं है। "विदितवेदितव्याः सन्तः सनातनं धर्ममाश्रयेयुः"—'जानने योग्य को जानते हुए सज्जन सनातनधर्म का आश्रय करें—" ऋग्वेद० १-११४-९ पर ऋषिदयानन्द कृत भाष्य का भावार्थ।

(२) आप्तोपदेशः शब्दः। न्याय० १-१-७ "(आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथादृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा। साक्षात्करणमर्थस्याऽऽप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्तः—वात्स्यायनभाष्ये)" अर्थात् आप्त पुरुष का उपदेश शब्द प्रमाण है। वेदमन्त्रार्थद्रष्टा योगाभ्यासजनित विज्ञान से पदार्थों और उनके तत्त्वों को जानने वाला विद्वान् आप्त होता है, उन तत्त्वों को लोककल्याण की इच्छा से अन्यों को उपदेश करने के लिये वह शब्दों का प्रयोग करता है—वह शब्द प्रमाण होता है। अर्थ के प्रत्यक्ष का नाम आप्ति और उसके द्वारा जो व्यवहार करता

अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनीमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूँ सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। मैं अपना मन्तव्य[3] उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उस को मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता[4] रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित[5] क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप[1]

है—वह आप्त होता है। (३) मन्तव्य का अभिप्राय "मत" है। ऋषि दयानन्द ने यहां कहा है कि जिस बात को तीनों कालों में एक समान माना जाता है, वही मेरा मत मन्तव्य है। (४) "डरता" इस शब्द का प्रयोग भय के अर्थ में नहीं किया गया, किन्तु आदर भाव से झुकने के प्रयोजन से है। (५) "गुणरहित" का भाव अविद्या अर्थात् विद्यादि से रहित है न कि सर्वथा सच्चरित्रतादि गुणों का अभाव।

(१) मनुष्यपनरूप में "पन" पद 'मनुष्यत्व' जाति के अर्थ में और 'रूप' पद

धर्म से पृथक् कभी न होवे, इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृजी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा, यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥भर्तृहरिः।[२]

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुख दुःखे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥
महाभारते।[३]

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥३॥ मनुः।[४]

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥४॥[५]

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्[६] ॥५॥ उ० नि०।

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूं कि जिन का विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने२ प्रकरण में कर दिया है। इनमें से :—

'स्वभाव' के लिये प्रयुक्त किया गया है, अतः पन और रूप दोनों एकार्थ के बोधक नहीं हैं। इससे अगला पद 'धर्म' दोनों अर्थों अर्थात् जाति और स्वभाव में प्रयुक्त होता है, इस शङ्का को दूर करने के लिये "मनुष्यपनरूप" शब्द का प्रयोग किया गया है। (२) राजा भर्तृहरि कृत नीति शतक ८४ वां श्लोक। (३) महाभारत उद्योग पर्व अध्याय ४० श्लोक १२+१३ तथा स्वर्गारोहणपर्व ५-६३। (४) मनुस्मृति, ८वां अध्याय, श्लोक १७। (५) मुण्डकोपनिषद्-३ मुण्डक, १ खण्ड, ६ श्लोक। (६) इस प्रमाण के पृथक्-पृथक् दो भाग हैं। पहिला—"न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम।" यहां "हि" के स्थान पर "अस्ति" पाठ भेद है, जैसे महाभारत शान्ति पर्व अध्याय १६२

लोक २४ तथा अनुशासन पर्व० अध्याय १४१ दूसरे स्थान पर अधिक पाठ भेद है—"नास्ति सत्यात्समो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम् ।" आदि पर्व ७४-१०४ (गोरखपुर संस्करण) परन्तु पाठ भिन्न होने पर अर्थ एक समान है, अर्थात् सत्य से श्रेष्ठ कोई कर्त्तव्य नहीं और झूठ से निकृष्ट कोई पातक—दोष नही। आदि पर्व वाले प्रमाण सत्य के महत्त्व पर ही बल दिया गया है। महाभारत के भिन्न-भिन्न संस्करणों में सहस्रों पाठ भेद मिलते हैं। ऋषि दयानन्द के सामने न जाने कौन सा संस्करण था, परन्तु ऋषि ने "सत्य" को बतलाने के लिये यह अंश लिखा है, जो कि ठीक है स्वमन्तव्यामन्तव्य में दिये इस श्लोक का दूसरा भाग य८ है—"नहि सत्यात्परं" ज्ञानं तस्मात्सत्यमाचरेत् ।" प्रमाण के लिये केवल ३० नि० लिखा है जो कि उपनिषद् का संक्षेप प्रतीत होता है। छान्दोग्योपनिषद् ७-१७-१ में यह पाठ मिलता है—"यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविज्ञानन् सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति ।" अर्थात् जब वह विशेष=तत्त्वरूप से जानता है, तब वास्तव में वह सत्य कहता है, विशेषरूप से न जानता हुआ सत्य नहीं कहता, अपितु विशिष्ट जानता हुआ ही सत्य बोलता है। सत्य का आधार विशेष ज्ञान है। स्वमन्तव्य में दिये प्रमाण का भी भाव यही है कि "सत्य से बढ़कर कुछ ज्ञान नहीं, उसी कारण मनुष्य विशेषरूप से विज्ञानवान् होकर सत्य का आचरण करे।' ऋषि दयानन्द ने यहां सत्य को धर्म मानकर ही ये प्रमाण प्रस्तुत किये है। ऋषि के भाव का द्योतक सत्य और धर्म एकार्थक हैं, इसका प्रमाण बृहदारण्यकोपनिषद्—अध्याय १, ब्राह्मण ४ और खण्ड १४ में यह लिखा है—"सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति ।" अर्थात् सत्य बोलते हुए मनुष्य के लिये कहा जाता है कि यह धर्म स्वरूप को कहता है और धर्म के स्वरूप को कहने वाले मनुष्य के लिए कहा जाता है कि यह सत्य कहता है। इस प्रकार निश्चय से सत्य और धर्म दोनों एकार्थक कहे जाते हैं। ऋषि के भाव को दो उपनिषदों ने कहा है, अतः प्रमाण में केवल ३. नि० लिखा गया है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऋषि दयानन्द को सहस्रों ग्रन्थों के पाठ स्मृतिरूप में उपस्थित थे। जाने किस ग्रन्थ और संस्करण का उद्धरण ऋषि ने

जो सच्चिदानन्दादि[७] लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार[८] सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ ॥

लिखा है, परन्तु उनका भाव उपर्युक्त दोनों उपनिषदों के पाठों में सुरक्षित है। (७) ईश्वर के नामों की व्यख्या सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में दी है। जैसे वहां लिखा है—"(टुनदि समृद्धौ) आङ् पूर्वक इस धातु से "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन्यद्वा यः सर्वान् जीवानानन्दयति स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वर का नाम आनन्द है। (अस भुवि) इस धातु से "सत्" शब्द सिद्ध होता है "यदास्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते सत्सद् ब्रह्म" जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्य वर्त्तमान कालों में जिस का बाध न हो उस परमेश्वर को "सत्" कहते हैं (चिती संज्ञाने) इस धातु से "चित्" शब्द सिद्ध होता है, "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनाने हारा है इसलिये उस परमात्मा का नाम चित् है। इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को "सच्चिदानन्तस्वरूप" कहते हैं। (८) परमेश्वर जीवों को फल देने में उनके कर्मानुसार ही स्वतन्त्र है, अर्थात् जीवों के कर्मों की अपेक्षा न करता हुआ स्वेच्छा से ही फल नहीं देता जैसे "ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात् ।" न्यायदर्शन अध्याय ४, आह्निक १, सूत्र १९। एक नास्तिक कहता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के आधीन है जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहे देता है जिस कर्म का फल नहीं चाहता नहीं देता इस बात से कर्म फल ईश्वराधीन है।" न पुरुष कर्माभावे फलानिष्पत्तेः।" न्याय द० ४.१.२०। "जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो बिना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता ? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है। इसलिये ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता किन्तु जैसा कर्म जीव करता

२—चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीति[६] संहिता मन्त्र भाग[१०] को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाण रूप हैं, कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रंथ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ[१] हैं उनको परतः[२] प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से

है वैसा ही फल ईश्वर देता है।" सत्यार्थप्रकाश ८म समुल्लास। (६) प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में अयोजि रूप में जन्म लेने वाले सबसे पवित्रात्मा चार ऋषियों के (हृदयस्थात्माओं के) ज्ञान में चारों वेदों (एक-एक ऋषि के ज्ञान में एक-एक वेद) का शब्द अर्थ और सम्बन्ध रूप ज्ञान का प्रकाश कर देता है। इसीलिये वेदों को ईश्वर प्रणीत कहा जाता है। ज्ञान के साथ ही ईश्वर उन ऋषियों को भाषा भी देता है क्योंकि भाषा के बिना ज्ञान निष्प्रयोजन होता, अतः ज्ञान के साथ भाषा का बोध होना भी स्वतः सिद्ध है। यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र २ में "यथेमां वाचं कल्याणी भावदानि जनेभ्यः" इस कल्याणी वेद-वाणी को सर्व मनुष्यहितार्थ उपदेशरूप में देता हूँ। यहां 'आ+वदानि' पद स्पष्ट रूप से भाषा ज्ञान का परिचायक है। (१०) कुछ लोग ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद ही मानते हैं, अतः स्पष्टीकरण के लिये ऋषि ने 'मन्त्रभाग संहिता' लिखा है, ब्राह्मण ग्रन्थों में इतिहास है—वे ऋषि मुनियों के बनाये हुए वेद-व्याख्यान ग्रन्थ हैं—"आख्यान" नहीं। वेदों में नित्य सत्य ज्ञान है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ही ईश्वर प्रणीत मन्त्र संहिताएं हैं।

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ–ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ। अङ्ग–शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द। इनमें अनेक पुस्तकें हैं। उपाङ्ग–सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, वेदान्त और मीमांसा (इन को दर्शन और शास्त्र नाम से भी कहा जाता है)। उपवेद–आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद इनमें प्रत्येक में भिन्न ग्रन्थ हैं)। शाखाएँ–११२७–आश्वलायन आदि (इन में ४ मूल वेदों को मिलाकर कहीं-कहीं ११३१ भी लिखते हैं, परन्तु ४ मूल

प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ ।[1]

३—जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको "धर्म" और जो पक्षपातसहित, अन्यायाचरण, मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेद विरुद्ध है। उसको "अधर्म" मानता हूँ ।।

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ[3] नित्य है उसी को जीव मानता हूँ ।।

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य[4] से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य[5] से अभिन्न हैं, अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ ।।

संहिताएं ईश्वर प्रणीत हैं और ११२७—ऋषियों की बनाई हुई हैं) । उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य बृहदारण्यक और श्वेताश्वेतर ११ प्रसिद्ध हैं, स्मृति—मनुस्मृति प्रसिद्ध और सर्वप्राचीन है, अन्य याज्ञवल्क्य स्मृति आदि नवीन और अनेक हैं । मूल संहिताएं ४ मूल वेदों को छोड़कर ये सब ग्रन्थ ऋषिकृत हैं । (२) चारों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद स्वतः प्रमाण हैं । इनकी सिद्धि इन्हीं से होती है, अतः स्वतः प्रमाण कहे जाते हैं । इन चारों वेदों के अतिरिक्त जितने भी ग्रन्थ हैं वे परतः प्रमाण कोटि में माने जाते हैं । अर्थात् वेदानुकूल होने पर इनकी प्रामाणिकता स्वीकार की जाती है—यदि इनमें कोई बात वेद विरुद्ध न हो तब । यदि इनमें कोई बात वेदानुकूल नहीं है अथवा वेद विरुद्ध है, तो उस बात का प्रमाण नहीं माना जाता । इसी कारण परतः प्रमाण कोटि में इनकी गणना की जाती है । (३) जीव स्वरूप से ही "अल्प" है अतः अल्पज्ञता भी सिद्ध हो जाती है । (४) विरुद्ध धर्म के भाव को वैधर्म्य कहते हैं । जैसे जल शीत और अग्नि उष्ण है अतः जल और अग्नि विरुद्ध धर्म—वैधर्म्यभाव वाले होने से भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं । (५) समान धर्म के भाव को साधर्म्य कहा जाता है, जैसे जल भी जड़ है । जल और अग्नि दोनों द्रव्यों में जडता समान धर्म है, अतः स्वरूप से जल और

६—"अनादि" पदार्थ तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव,[६] तीसरा प्रकृति[७] अर्थात् जगत् का कारण[८] इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य[९] है ॥

७—"प्रवाह से अनादि" जो संयोग[१] से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग[२] के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे[३] प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य[४] उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ॥

अग्नि भिन्न-भिन्न द्रव्य होते हुये भी जडता समान धर्म वाले कहे जाते हैं। इतना ही इन में साधर्म्य है। (६) जीव असंख्य है, परन्तु सब में जीवत्व जाति एक होने से यहाँ जीव को एक पदार्थ कहा गया है। (७) प्रकृति भी सत्व, रजः और तमः इन तीन प्रकार के मूल तत्त्वों की साम्यावस्था रूप एक संघात है, इसीलिये प्रकृति को भी एक ही पदार्थ कहा जाता है। वैसे जीव के नाना होने के समान सत्व, रज और तमः तीनों तत्त्व भी नाना हैं। (८) यहां कारण का अभिप्राय उपादान कारण से है। सांख्य में प्रकृति को उपादान कारण कहा जाता है और न्याय तथा वैशेषिक में इसी कारण का नाम "समवायी" शब्द से कहा जाता है। योग और वेदान्त दर्शनों में सांख्य दर्शन की प्रक्रिया का व्यवहार होता है। प्रक्रिया में नाम की भिन्नता है, अर्थ एक ही है। (९) नित्य उस पदार्थ को कहा जाता है जो उत्पत्ति और विनाश से रहित होता है अर्थात् तीनों कालों में वर्त्तमान रूप से बना रहता है।

(१) संयोग=यहाँ संयोग का अभिप्रायः दो अथवा अधिक परस्पर व्यवधान के बिना परमाणुओं के मिलने से है। (२) वियोग परस्पर मिले हुए परमाणुओं का अलग-अलग हो जाना वियोग कहा जाता है। (३) जिससे—यहां यह भाव है कि परमाणुओं में प्रथम बार जो संयोग करने वाला परमाणुओं का धर्म है उससे, (४) परमाणुओं को सर्वप्रथम मिलाने वाले परमाणु गतधर्म को सामर्थ्य कहा जाता है। वह सामर्थ्य परमाणुओं में अनादि रूप से रहता है। परमाणुओं के अलग-अलग हो जाने पर भी वह सामर्थ्य परमाणुओं में बना रहता है, परमाणुओं में वियोग होने पर उसका नाश नहीं हो जाता। प्रलयकाल में भी परमाणु अपने सत्तास्वरूप में बने रहते हैं। "परं वा त्रुटेः।" न्या० द०

८—"सृष्टि" उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों[५] का ज्ञान युक्ति-पूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ॥

९—"सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त[६] गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी न किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं ? उसने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के सामर्थ्य[७] की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी ॥

१०—"सृष्टिसकर्तृक" है इसका कर्त्ता[८] पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और पदार्थ[९] में अपने आप यथायोग्य बीजादि[१०] स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का "कर्त्ता" अवश्य[११] है ॥

---

४. २. १५ अर्थात् पदार्थ का वह अन्तिम अवयव—टुकड़ा जिसका आगे और टुकड़ा नहीं हो सकता, उस अन्तिम टुकड़े का नाम परमाणु है और वह प्रथम संयोग कराने का सामर्थ्य भी परमाणुओं में बना रहता है। इसी कारण प्रलय के पश्चात् फिर सृष्टि परमाणुओं के संयोग से बनती है। (५) द्रव्यों से अभि-प्राय: उपर्युक्त परमाणुओं से है। इन द्रव्यों का मेल ज्ञान और युक्तिपूर्वक होता है, अत: इस मेल का करने वाला चेतनस्वरूप ईश्वर है। (६) सृष्टि की उत्पत्ति में ईश्वर निमित्त करता है। सृष्टि बनाने का प्रयोजन जीवों को उनके कर्मानु-सार कर्मफल—सुख-दुःख का भोग कराना और अधिकारी मुमुक्षुओं को मुक्ति का आनन्द प्राप्त कराना है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने का सामर्थ्य निमित्त कारण रूप से ईश्वर में है। (७) इसी सृष्टि रचना आदि कर्म से ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव की सफलता होती है। (८) कर्त्ता से अभिप्राय: चेतन निमित्त कारण से है। (९) जड़ पदार्थ में अपने आप नियमपूर्वक बनने और बिगड़ने का सामर्थ्य नहीं है। (१०) ईश्वरीय सृष्टि की रचना आदि में अमैथुनी (माता-पिता के संयोग के बिना) रूप में ईश्वर ही सृष्टि के सब पदार्थों के बीजों और सब मनुष्य, पशु, पक्षी, खरीसृपों आदि की योनियों के शरीरों के प्रथम ढांचों का निर्माण करके उनमें जीवों का संयोग कर देता है। इसी के साथ प्राण, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध स्थापित कर देता है। पहिली अमैथुनी ईश्वरीय सृष्टि के पश्चात् योनिज सृष्टि चलती है। इसको मैथुनी सृष्टि कहते हैं। जीवों द्वारा की जाने वाली रचना को ईश्वर नहीं करता। (११) अवश्य शब्द से

११—"बन्ध" सनिमित्तिक अर्थात् अविद्या[12] निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वर भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख[13] फल करने वाले हैं इसलिये यह "बन्ध" है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना[14] पड़ता है॥

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्व दुखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचारना[15], नियत समय[16]

अनुमान प्रमाण द्वारा ईश्वर में कर्तृत्व धर्म की सिद्धि की गई है। (१२) अविद्या का भाव अज्ञानपूर्वक कर्म से है। (१३) जीवों के पाप रूप कर्म का फल दुःख है और पुण्य रूप कर्मों का फल सुख है। (१४) अनिच्छा होते हुए भी जीव-जीव को फल भुगवाने के लिए बन्धन (शरीरादि सम्बन्ध से) में डालता है। (१५) मुक्तिकाल में जीव सङ्कल्पमय शरीर (मानस) से सर्वत्र जाता आता है जैसे "तृतीये धामन्नध्यैरयन्त" (यजु० ३२.१०) 'अध्यैरयन्त' का अर्थ है अधिकारी रूप में सब जगह पहुँचना। मुक्ति में मुक्तात्मा एक ठिकाने नहीं रहते किन्तु "अमृतमानशानाः" (यजु० ३२.१०) ईश्वर के आनन्द का ग्रहण करते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं। (१६) नियम समय का अभिप्राय यह है कि जितना काल ३६ हजार बा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल का है उतना समय मुक्ति में जीव आनन्द भोगता है। "यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते" (छा० उप० ८. १५. १) अर्थात् ब्रह्मलोक—ब्रह्मदर्शन का काल इतना है—सृष्टि का काल २ अरब ३२ करोड़ वर्ष और इतना ही प्रलय काल—दोनों को मिलाकर ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष हुए—यह काल ब्रह्मलोक का १ दिन रात होता है। इस प्रकार १०० वर्ष की आयु में ३६००० दिन रात होते हैं। तब ३६००० को ८ अरब ८६ करोड़ से गुणा करने में जो काल संख्या बनती है, इतने नियम तक जीव मुक्ति का आनन्द भोगता है। मुक्तिकाल के बीच में जीव संसार में जन्म नहीं लेता जैसे ऋषि ने संस्कारविधि के संन्यास प्रकरण में दिए ऋग्वेद के मन्त्र ९.११३.११ में प्रयुक्त "अमृतम्" पद का अर्थ यह लिखा है – "जन्म-मृत्यु के दुःख से रहित मोक्षप्राप्तयुक्त कि जिस मुक्ति के समय के मध्य में संसार

पर्यन्त मुक्ति के आनन्द के भोग के पुनः[१७] संसार में आना ॥

१३—"मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और

में नहीं आना पड़ता"। इसी भान्ति इसी प्रकरण में मनुस्मृति के दिए प्रमाण अध्याय ६ के श्लोक ८० और ८४ के अर्थों की टिप्पणी में ऋषि ने लिखा है "निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं कर सकता। तथा अनन्त इतना ही है कि सुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश न होवे। पहिला अर्थ मनुस्मृति के ८१वें श्लोक में "शाश्वतम्' पद के अर्थ की टिप्पणी रूप में है और दूसरा अर्थ मनुस्मृति के ८४वें श्लोक में "आनन्त्यम्" पद के अर्थ की टिप्पणी रूप मे दिया गया है। उपर्युक्त पूरे श्लोक नहीं संस्कारविधि के संन्यास प्रकरण में देखें तथा ऋ० ९.११३.११ मन्त्र के "अमृतम्" पद का अर्थ भी वहीं देखें। (१७) इसका भाव यह है कि मुक्त आत्मा मुक्तिकाल में आनन्द भोगकर फिर संसार में जन्म लेते हैं। इसके लिए सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में दिये ऋग्वेद १.२४.१ तथा २ दोनों मन्त्रों के अर्थ देखें और ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य में भी इनके अर्थों को देखें। प्रकरणानुसार इतना ही लिखा जाता है—"हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है।" इस अर्थ को बतलाने वाले वेद के पद ये हैं—"मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च।" इसका अर्थ ऊपर दे ही दिया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मुक्तिकाल के समाप्त होते ही मुक्तात्मा माता-पिता के सम्बध से माता के गर्भ में आता है। अयोनिज सृष्टि में जन्म लेने की बात नहीं है। संसार के बीच के समय में मुक्ति की समाप्ति पर अनयोनिज–अमैथुनी सृष्टि का कुछ काम नहीं, क्योंकि अमैथुनी सृष्टि तो आरंभ में ईश्वरीय सृष्टि होती है, जिसका वर्णन अभी ऊपर किया जा चुका है। यह सब रहस्य ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश के बार-बार मनन करने से ही खुल सकता है।

जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।

१५—"काम" वह है जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

१६—वर्णाश्रम गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।

१७—"राजा[1]" उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपात रहित न्यायधर्म की सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उसको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढाने में सदा यत्न किया करे॥

१८—"प्रजा" उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत्[2] वर्त्ते॥

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो न्यायकारी है, उसको मैं भी ठीक मानता हूँ॥

२०—"देव" विद्वानों को और अविद्वानों "असुर" पापियों को "राक्षस" अनाचारियों को "पिशाच[3]" मानता हूं॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अथिति, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्तियों[4]

---

(१) राजा, सभापति और अध्यक्ष शब्द एकार्थक हैं "जैसे राजा जो सभापति" (सत्यार्थप्रकाश ८ वां समुल्लास) राजा को सभा और प्रजा के आधीन रहना चाहिये—यह वचन इसी स्थल पर लिखा है। (२) पुत्रवत जहां राजा को प्रजा के साथ पुत्रवत् वर्तना चाहिये, वहां इस स्थल से यह भाव भी प्रकट होता है कि प्रजा भी राजा को पुत्रवत् समझें, पुत्रवत् इसलिये कहा गया है कि प्रजा ही निर्वाचन द्वारा राजा का निर्माण करती है। (३) पिशाच, राक्षस, असुर और देव—ये सब मनुष्य जाति के ही भाग हैं। गुण, कर्म और स्वभाव में भिन्न होने से मनुष्यों के ये चार विशेष भेद दिये गये हैं। (४) माता, पिता, आचार्य, अतिथि, राजा और धर्मात्मा जन आदि विद्वानों की मूर्त्तियों से उनके शरीर से

को पूज्य[५] और पाषाणादि जड़ मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य मानता हूँ ॥

२२ – "शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता,[६] धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा[७] कहते हैं ॥

२३ – "पुराण—जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी[१] नाम से मानता हूँ अन्य भागवतादि को नहीं !।

अभिप्राय है न कि उनकी पत्थर आदि की मूर्त्तियों से, क्यों पूज्य यही हैं। इनका सत्कार, सेवा और आज्ञा का पालन करना ही इनकी पूजा कहलाता है। क्योंकि आगे लिखा है कि "और पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य मानता हूँ।" (५) इस से प्रकट है कि माता आदि चेतनों की शारारिक अवस्था की मूर्त्तियां पूजा योग्य हैं। यद्यपि माता आदि के शरीर भी जड़ हैं, परन्तु इन में चेतन जीव का निवास है। परन्तु पाषाण आदि जड़ मूर्त्तियों में चेतन जीव का संयोग नहीं है। ईश्वर की पूजा भी जड़ पाषाणादि मूर्त्तियों द्वारा नहीं करनी चाहिये। उपासना वहीं की जा सकती है, जहाँ उपास्य—ईश्वर, उपासक—जीव एक ही स्थान पर हों। यद्यपि सर्वव्यापक होने से जड़ पाषाणादि मूर्तियों में उपास्य ईश्वर है, परन्तु उन में उपासक जीव नहीं है। ऐसा स्थान मनुष्य का हृदय देश है, जहाँ ईश्वर और जीव दोनों हैं। (६) सभ्यता का अर्थ है—रहन-सहन का शिष्ट सम्मत ढंग। संस्कृति इससे भिन्न पदार्थ है। (७) शिक्षा नाम केवल विद्या ग्रहण का ही नहीं है, प्रत्युत शिक्षा का भाव है "सीख" इसमें अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त और भी बर्ताव करने योग्य अनेक ढंगों का संग्रह समझना चाहिये।

(१) पुराण आदि शब्द विशेष विद्याओं के बोधक हैं, इनका मूल अथर्ववेद में मिलता है, वेद में पुराणादि ग्रन्थों का वर्णन नहीं, वहां तो विद्याओं के गुणवाची पुराण आदि नाम हैं जैसे "इतिहास्य च पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।" अथर्व० काण्ड १५, सूक्त ६, मन्त्र १०।

२४—"तीर्थ"—जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ इतर जलस्थलादि को नहीं

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इसलिये है कि जिससे संचित[2] प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ ॥

२७—"संस्कार" उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें वह निषेकादि श्मशानान्त[3] सोलह प्रकार का है इस को कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी न करना चाहिए ॥

२८—"यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथा योग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ ॥

२९—जैसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ ॥

वेद से ही सब पदार्थों के गुणवाची यौगिक नामों को लेकर ऋषियों ने ब्राह्मण ग्रन्थ बनाये, उन्हीं को पुराण आदि नाम से कहा जाता है। भागवतादि पुराणों में परस्पर मतमतान्तर का विरोध पाया जाता है, अतः पुराण नाम से इन भागवतादि ग्रन्थों का नाम पुराण हो सकता है। (२) संचित और प्रारब्ध की व्याख्या 'आर्योद्देश्य रत्नमाला' के प्रकरण में की जावेगी। आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक का प्रकाश की स्वमन्तव्यामन्तव्य के साथ ही किया गया है। (३) गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त १६ संस्कार माने गये हैं जैसे निषेकादिश्मशान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः" मनुस्मृति २-१६ अर्थात् शरीर का आरम्भ गर्भाधान और अन्त दाहक्रिया पर है, मन्त्रों द्वारा इनका विधान कहा गया है। संस्कार

३०—"आर्य्यावर्त्त" देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्म पुत्र नदी है, इन चारों के बीच[४] में जितना देश है उसको "आर्य्यावर्त्त कहते और जो इनमें सदा से रहते हैं उनको भी आर्य [५]कहते हैं ॥

३१—जो साङ्गोपाङ्ग[१] वेदविद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह आचार्य कहाता है।

३२—"शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

३३—"गुरु" माता-पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और जो असत्य को छुड़ावे वह भी गुरु कहाता है।

शब्द की व्याख्या आर्योद्देश्यरत्नमाला के प्रकरण में की जावेगी। (४) बीच का अभिप्राय यह है कि जहां तक इनका विस्तार है वहां तक आर्य्यावर्त्त देश कहा जाता है, जैसे सत्यार्थप्रकाश ८ वें समुल्लास में मनु० २-२२+२७ की व्याख्या में लिखा है—"हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है।" (५) "और जो इनमें सदा से रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं" यह एक परिभाषा है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी मतमतान्तर का मानने वाला है, परन्तु वह आर्यावर्त्त में रहने से "आर्य" नाम से कहा जावेगा—यह ऋषि ने राजनीति के रूप में "आर्य" शब्द की परिभाषा दी है।

(१) अङ्ग और उपाङ्गों की गणना दूसरे मन्तव्यामन्तव्य की टिप्पणी में की जा चुकी है, वहीं देखें। निरुक्त १-२-४ में आचार्य पद की निरुक्ति ऐसे की है—"आचार्यः कस्मादाचार्यं आचारं ग्राहयत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा।" अर्थात् आचार्य उसको कहते हैं जो कि पूजा के योग्य है,

३४—"पुरोहित"[२] जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

३५—"उपाध्याय" जो वेदों का एक देश वा अङ्गों को पढ़ाता हो।

३६—"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों[३] से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहाता है।

३७—प्रत्यक्षादि आठ[४] प्रमाणों को भी मानता हूँ।

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा सब के सुख के लिये यत्न करता है उसी को आप्त कहता हूँ।

३९—"परीक्षा" पांच प्रकार की है। जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टि-क्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवी अपने आत्मा[१] की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये।

४०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठचार और सुख बढ़ें उसके करने को परोपकार कहता हूँ।

श्रेष्ठाचार को ग्रहण कराता है, शास्त्रों के अर्थों को पूरे रूप में शिष्यों को देता है और उनकी बुद्धि का भी विकास करता है। (२) संस्कारविधि के जातकर्म संस्कार पर ऋषि दयानन्द ने टिप्पणी में लिखा है—"धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जाननेहारा, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूज्य, सर्वोपरि गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।" (३) प्रत्यक्षादि प्रमाणों के लक्षण आर्योद्देश्यरत्नमाला में ऋषि ने दिये हैं, इन पर वहीं विशेष लिखा जावेगा। (४) प्रमाण ८ हैं, ४, हैं, ३ हैं अथवा २ हैं, इस संख्या के निर्णयार्थ भी आर्योद्देश्यमाला के प्रकरण में लिखा जावेगा।

(१) जैसे किसी कारण से अपने आत्मा को सुख वा दुःख होता है, उसी भांति दूसरों के सुख वा दुःख को समझना आत्मा की पवित्रता कहलाती है। जिस व्यवहार से अपने को दुःख पहुँचता है, वैसा व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये और जिससे अपने आत्मा को सुख पहुँचा हो, वैसे व्यवहार को

४१—"स्वतन्त्र" "परतन्त्र" जीव अपने कामों में स्वतन्त्र[२] और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।

४२—"स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री[३] की प्राप्ति का है।

४३—"नरक" जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री[४] की प्राप्ति होना है।

४४—"जन्म[५]" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्यभेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।

४५—शरीर के संयोग[६] का नाम जन्म और वियोगमात्र[७] को मृत्यु कहते हैं।

दूसरों को सुख पहुंचाने के लिये करे। (२) स्वतन्त्र का अर्थ ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में ऐसे किया है—"स्वतन्त्र किसे कहते हैं? (उत्तर) जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों, जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता।" ७–समुल्लास। (३)+(४) सुख और दुःख जिन-जिन साधनों से होता है, उन सबको सुख और दुःख की सामग्री कहा जाता है। सुख विशेष के भोग का नाम ही स्वर्ग और दुःख विशेष के भोग का नाम नरक है। सामग्री पद का ग्रहण इसलिये किया गया है कि उनके बिना सुख दुःख की उपलब्धि नहीं हो ससती। (५)+(६)=जीव के साथ शरीर के सम्बन्ध होने का अर्थ जन्म और शरीर से जीव के निकल जाने का नाम मृत्यु है। "पूर्व" से जो जन्म हो चुका अर्थात् भूतकाल में हुआ था। "मध्य" का अर्थ वर्त्तमान जन्म से है और "पर" का अर्थ जो इस जन्म के आगे भविष्यत्काल में होगा। (७) इसका भाव यह है कि मृत्यु होने पर केवल स्थूल शरीर का ही वियोग होता है। "सूक्ष्म शरीर जन्म मरण आदि में भी जीव के साथ रहता है। तीसरा कारण शरीर जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढनिद्रा होती है वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कार जन्य

४६—"विवाह" जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह "विवाह" कहाता है।

४७—"नियोग" विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल[८] में पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना[९]।

४८—"स्तुति" गुण कीर्त्तन, श्रवण और ज्ञान होना, इस का फल प्रीति आदि होते हैं।

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं। उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इस का फल निरभिमान आदि होता है।

५०—"उपासना" जैसे ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप[१] हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात्[२] करना उपासना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

शुद्ध शरीर का पराक्रम भक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।" सत्यार्थ-प्रकाश ९ वां समुल्लास (८) जो स्त्री या पुरुष जितेन्द्रिय रह सकें, किन्तु विवाह का नियोग भी न करें, तो ठीक है, परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये।"—सत्यार्थप्रकाश चौथा समुल्लास। (९) विवाह और नियोग का प्रयोजन केवल सन्तानोत्पत्ति करना ही है, विषय वासना में फंसना नहीं। विवाह की भांति ही नियोग भी विधवा स्त्री और विधुर पुरुष की इच्छा से नियमपूर्वक प्रसिद्धि से होता है। प्रसिद्धि का अभिप्राय जनता की जानकारी से है।

(१) समीप शब्द से सिद्ध होता है कि ईश्वर और जीव पृथक् पृथक् पदार्थ हैं। योगाभ्यास में भी दोनों का भान प्रथक्-प्रथक् होता है। ७ समुल्लास में लिखा है—'अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो-जो काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये।" (२) "प्रत्यक्ष" पद का यह स्पष्ट भाव है कि

५१—"सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुण निर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुण निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण निर्गुणोपासना होती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो २ बात सबके सामने माननीय है उसको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धातों को स्वीकार करता हूँ और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं; उनको मैं प्रसन्न[3] नहीं

जीवात्मा परमेश्वर का साक्षात् करता है जैसे—"अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् समाधि दशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापाक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है।" अयम् अपने से दूसरे के लिये "यह" कहा जाता है। "जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं।" ७ म समुल्लास। "इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।" ७ म समुल्लास। "शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है।" १२ वां समुल्लास। परमात्मा का प्रत्यक्ष आत्म-मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है। "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" तै०उ०नि० में लिखा है कि तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है। "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्"—यजुर्वेद अ० ३१.१८ इसका अर्थ यह है कि (अहम्) मैं उपासक योगी (महान्तम्) महान् (एतम्) इस (प्रत्यक्षं पुरुषम्) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर को (वेद) जानता हूँ। अर्थात् परमेश्वर का देखना चर्मचक्षुओं से नहीं, अपितु यह ज्ञान गम्य है। (३) "प्रसन्न" शब्द का प्रयोग ऋषि ने "पसन्द" अर्थ में किया है।

करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को एक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा यत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त-जनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावें" जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धी करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

* * * *

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा ॥ शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्री विरजानन्द सरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्त-व्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्त्तिमगमत्।

टि० अब आगे आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० महामुनि जी शास्त्री विद्याभास्कर-आचार्य गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा-भैंसवाल की टिप्पणियां दी जाती हैं—

(५ वां मन्तव्य) ईश्वर और जीव दो भिन्न सत्ताएं हैं (पदार्थ हैं) एक नहीं, क्योंकि दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। यथा जीव स्वरूप से अल्प-अल्पज्ञ है ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है। जिनमें वैधर्म्म (असमानता) होता है वे पृथक् (भिन्न) पृथक् होते हैं एक (अभिन्न नहीं हो सकते) यथा जीव राग द्वेष अज्ञान अविद्या आदि युक्त है, ईश्वर ऐसा नहीं है। ईश्वर और जीव उपास्य उपासक, व्याप्य व्यापक, पिता पुत्र, गुरु शिष्य, उपदेष्टा उपदेश्य आदि

सम्बन्ध वाले हैं। सम्बन्ध द्विष्ठ (दो म) होता है। एक में सम्बन्ध नहीं होता। (७ वां) "इन तीनों को" संयोग, वियोग और संयोग वियोग के सामर्थ्य को।' (६ वां) सृष्टि निमित्त "पद" गुण, कर्म, स्वभाव इन तीनों का विशेषण है। अर्थ=सृष्टि है निमित्त कारण जिनका (एतादृश ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव 'यथावत् भोग करना' यहां 'करना' का अभिप्राय 'कराना' है। (१० वां) 'सकर्तृक' का अर्थ है कर्त्तावाली। "कर्त्ता अवश्य है का अभिप्राय-कर्त्ता आवश्यक है, जानना चाहिये अथवा अवश्य मन्तव्य है। (११ वां) "जो २ पाप कर्म, ईश्वर-भिन्नोपासना, अज्ञान आदि सब दुःख फल करने वाले हैं" इसमें स्पष्टार्थ के लिये 'अज्ञानादि' के पश्चात्–"हैं वे" इन दो पदों का अध्याहार कर लेना चाहिये। (२१ वां) 'इनकी मूर्तियों को' इसका आशय है 'इन चेतन मूर्त्तियों को' अर्थात् माता-पिता आदि चेतनों की मूर्तियों को। (२५ वां) यहां पुरुषार्थ का अभिप्राय 'वर्तमान में किया जाने वाला उद्योग' समझना चाहिये। जिससे सञ्चित प्रारब्ध बनते का अर्थ 'सञ्चित और प्रारब्ध' से जानना चाहिये। [क्योंकि कर्मों की तीन अवस्थाएँ हैं, प्रारब्ध क्रियमाण और सञ्चित)। 'जिसके सुधरने से सब सुधरते-यहाँ 'सब' शब्द से प्रारब्ध, क्रियमाण और सञ्चित तीनों लेने चाहियें। (२६ वां) आशय यह है 'जो सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख दुःख हानि लाभ में वर्त्तता है उसको (मनुष्यों में) श्रेष्ठ मनुष्य और जो अन्यथा वर्त्तता है उसे बुरा मनुष्य समझता हूँ। मनुष्य की यह परिभाषा महर्षि ने इसलिये की-कि उस काल में तथा (वर्त्तमान काल में भी) अन्धमतवादी जन स्वमतावलम्बी पापी जन को भी अच्छा समझते थे (वा समझते हैं) परमात्मावलम्बी धर्मात्मा को भी बुरा मानते थे। ऐसा ही वर्त्तमान काल में भी राजनैतिक मतमतान्तरों (पार्टियों में भी हो रहा है। (२८ वां) यहाँ यज्ञ के चार प्रकार के अर्थ किये हैं। एक विद्वानों का सत्कार करना। दूसरा यथायोग्य शिल्पकला रसायनविद्या आयुर्वेदोक्तादि, पदार्थ विद्या परमाणु आदि के संयोग वियोग विशेष को वैज्ञानिक रीति से जानना तथा इन सबसे उपयोग लेना–लोकोपकारक कार्य करना। तीसरा विद्या-आदि शुभगुणों का दान चौथा अग्नि होत्रादि से अश्वमेधान्त याग विशेष करना। 'उसको उत्तम समझता हूँ का आशय–स्व-पर-उपकारक कार्यों में यज्ञ कर्म को

सबसे भला उपकारक कर्म समझता हूं (ज्ञो वे श्रेष्ठतमं कर्म) अथवा पूर्वोक्त चार प्रकार के यज्ञ कर्म में अन्तिम अग्नि होत्रादि को सर्वोत्तम कर्म समझता हूं। (३० वां) 'आदि सृष्टि' प्रलयानन्तर होने वाली प्रारम्भिक सृष्टि। यहां हिमालय आदि को 'अभिविधि' अर्थ में ग्रहण करना चाहिये। 'मर्यादा' में नहीं। अभिविधि=परला किनारा। मर्यादा=इधर का किनारा। 'जो इन में सदा से रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं' का आशय–जो श्रेष्ठ धर्मात्मा मनुष्य हैं वे तो आर्य हैं ही परन्तु जो आर्यवर्त्त के आर्यों में (आर्यवर्त्त देश में) बाहर से आकर भी सदा के लिये पीढी दर पीढ़ी से निवास करने लग जाते हैं। स्व जन्मभूमि समझते हैं। वे भी आर्यत्व को प्राप्त करके आर्य पद वाच्य हो जाते हैं। (४० वां) 'उस के करने को' वर्त्तमान कालिक भाषा में वैसा करने को, अर्थ=उस प्रकार के कर्म करने को क्योंकि प्रथमोक्त 'जिस (से)' (यत्) पश्चाद् उक्त 'उस (के)' (तत्) दोनों सर्वनाम हैं और 'कर्म' के विशेषण हैं। (४१ वां) जीव स्वतन्त्र भी है। और परतन्त्र भी परन्तु परमात्मा 'स्वतन्त्र' ही है। (४७ वां) विवाह के पश्चात् पति वा पत्नी के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि रोगों में स्त्री का पुरुष के आपत्काल में स्व वर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष के साथ स्त्री का, स्व वर्ण वा अपने से हीन वर्ण स्त्री के साथ पुरुष का सान्तनोत्पत्ति करना।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध महोपदेशक श्री पं० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी गुड़गावां ने प्रथम मन्तव्य में प्रयुक्त "सर्वशक्तिमान" पद पर इस प्रकार टिप्पणी लिखी है। "(प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान है वा नहीं ? (उत्तर) है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान का अर्थ समझते हो वैसा नहीं, किन्तु सर्वशक्तिमान् का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन प्रलयआदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था किञ्चत् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है। (प्रश्न) हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है। (उत्तर) वह क्या चाहता है जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार अनेक ईश्वर बना स्वयं अविशान् चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म

कर और दुःखी भी हो सकता है ? जैसे ये काम ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है वह कभी नहीं घट सकता इस लिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है ।।"—सत्यार्थ प्रकाश-७ वां समुल्लास ।।

इससे आगे आर्यसमाज के प्रकाण्ड विद्वान् पं. बृहस्पति जी आचार्य वेद शिरोमणि एम. ए. देहरादून ने ४० वें मन्तव्य "उपकार" पर यह लिखा है-- ऋषि की इस परिभाषा का आशय यही है कि किसी व्यक्ति की केवल शारीरिक अथवा आर्थिक सहायता करना ही परोपकार नहीं कहलाता, अपितु उसको दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों से छुटकारा दिलाकर, सद्‌गुण, सद्‌व्यसन और सुख को प्राप्त कराना ही उपकार कहाता है। संसार भर में ऐसे मानव समाज का विकास, व्यवस्था और स्थापना करना ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, जिससे मानव समाज के सभी व्यक्तिगत सदस्य भी सद्‌गुणी, सद्‌व्यसनी और सुखी श्रेष्ठ आर्य और अपने स्वामी 'अर्थ' ईश्वर के पुत्र और भ्रातृभाव से मुक्त हों। ऋषि ने "आर्य" शब्द किसी जाति विशेष के संकुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया है ।।"

पृ० २३ पर आये वेदमन्त्र की टिप्पणी—

(१) यह मन्त्र भाग यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के ६ वें मन्त्र का है। (२) इससे अगला भाग तैत्तिरीयोपनिषद् का है। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में दोनों भाग दिये हैं और सत्यार्थप्रकाश के अन्त में भी दोनों ही दिये हैं, परन्तु दूसरे भाग में आरम्भ और अन्त में पाठ की भिन्नता है। आरम्भ में भविष्यत्काल का प्रयोग है—जैसे "त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु मामवतु वक्तारम्। अर्थात् आप ही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके सबको नित्य ही प्राप्त हैं। जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसका मैं सबके लिए उपदेश और आचरण भी करूंगा। सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्य ही करूंगा। सो आप मेरी रक्षा कीजिये। सो आप मुझ आप्त वक्ता की रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है। यह दूसरी बार पाठ अधिकार्थ के लिये है।"—१ म समुल्लास। यह सत्यार्थ-

प्रकाश के आरम्भ का प्रतिज्ञावचन है। (२) सत्यार्थप्रकाश के अन्त में पाठ के भेद से यह कहा गया कि "मैंने तुझ ब्रह्म का प्रत्यक्ष वर्णन कर दिया। ज्ञान-पूर्वक कह दिया। यथार्थ वर्णन कर दिया। तूने मेरी रक्षा की वक्ता की रक्षा की। मुझ वक्ता की रक्षा की। प्रतिज्ञा पूरी होने पर भूतकाल का प्रयोग किया गया है। यह आर्ष पद्धति है—जैसे तैत्तिरीय उपनिषद् के आरम्भ का पाठ ही ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में दिया है और इसी उपनिषद् के शिक्षाध्याय के १२ वें अनुवाद का पाठ सत्यार्थप्रकाश के अन्त में दिया है। महाभास्य १.१.१ में पतञ्जलि ऋषि ने लिखा है—"न सर्वैलिङ्गैर्न सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदित:। तेचावश्यं यज्ञगतेन यथायथं विपरिणमयितव्या:।" अर्थात् वेद में सब लिङ्गों और विभक्तियों में वेदमन्त्र नहीं उपदिष्ट किये गये हैं और यज्ञगत पुरुष को उन-उन मन्त्रों में प्रकणानुसार विपरिणाम—परिवर्तन कर लेना चाहिये। इस नियम का मूल यजुर्वेद में मिलता है जैसे "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। यजुर्वेद १०५॥ अर्थ—"(व्रतपते) सत्यभाषणादि धर्मों के पालक और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर (अहम्) मैं (इदम्) इस (अनृतात्) झूठ से अलग (प्रत्यम्) सत्यव्रत के आचरण रूप नियम को जो वेद विद्या, प्रत्यक्षादि प्रमाण, सृष्टि क्रम, विद्वानों का सङ्ग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से निर्भ्रान्त सर्वहिततत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारे प्रमाणों से सिद्ध अच्छी प्रकार परीक्षा किया हुआ है उस (व्रतम्) सत्य बोलना, सत्य मानना सत्य करना रूप व्रत का (आ चारिष्यामि) पालन करना जिसको कि मैं (उपैमि) नियम से ग्रहण करने वा जानने और प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ (तत्) उस सत्यस्वरूप नियमानुष्ठान करने को मैं (शकेयम्) समर्थ होऊँ (तत्) (में) मेरे उस व्रत को आप अपनी कृपा से (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध-कीजिये।" ऋषि दयानन्द का भाषार्थ। इस मन्त्र में आचरण करूँगा, उसमें समर्थ होऊँ और तू सिद्ध कर आदि क्रियाएँ भविष्यत्व्रत को बताती हैं। अर्थात् व्रत आरंभ करने से पूर्व की यह स्थिति मंत्र द्वारा कही गई है। इसके पश्चात् व्रत की समाप्ति पर यजुर्वेद० २.२८। "अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकंतन्मेऽराधी हिमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि।' अर्थ—हे (व्रत पते) न्याययुक्त नियम कर्म के पालन

करने हारे (अग्ने) सत्यस्वरूप परमेश्वर ! आप ने जो कृपा करके मेरे लिये (व्रतम्) सत्यलक्षणादि प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छे प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ हुआ हूँ (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सका हूं, वैसा मुझ को दीजिये । जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है (तदेवाहम्) उसी को भोगता हूँ, अब भी जो (इदम्) मैं सा कर्म करने वाला (अस्मि) हूँ, वैसे कर्म के फल भोगने वाला (अस्मि) होता हूँ ।" ऋषि दयानन्द का भाषार्थः । जो व्रत पर आचरण की प्रतिज्ञा यजु० १.५ मन्त्र द्वारा की गई थी, उसी प्रतिज्ञा की पूर्त्ति इस यजु० २.२८ मन्त्र द्वारा प्रतिपादित की गई है । प्रतिज्ञा आरम्भ में भविष्य कालिक क्रियाओं रूप था और व्रत की समाप्ति पर भूतकालिक क्रियाओं का रूप इस यजु० २.२८ में उपदिष्ट किया गया है । ऋषि दयानन्द ने वेद के उपदेश आर्य प्रणाली के अनुसार ही स्वमन्तव्यामन्तव्य की समाप्ति सूचक इस नियम का निर्वाह किया है । तथा इसी नियम को ऋषि दयानन्द ने अपने एक विज्ञापन में भी स्वीकार किया है अर्थात् विज्ञापन के अन्त में भी यही स्वमन्तव्यामन्तव्य का पाठ लिखा है, देखें–"ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० द्वारा सम्पादित-विज्ञान संख्या ५, पूर्ण संख्या १०, पृष्ठ संख्या २२ ।

समाप्त

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के विविध संस्करण और अनुवाद

(संकलन कर्त्ता—डा० भवानीलाल भारतीय, एम० ए० पी० एच० डी०)

१. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश—वैदिक यंत्रालय, अजमेर से प्रकाशित।
२. „ सार्वदेशिक, प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित।
३. „ सम्पादक—जगत्कुमार शास्त्री—गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली।
४. „ आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर।
५. दयानन्द के दिव्य विचार—सम्पादक किशोरीलाल गोस्वामी, गोविन्द ब्रादर्स, अलीगढ़ १९३४ ई०
६. वैदिक धर्माचार्य दयानन्द सरस्वती प्रतिपादित आदेश—(मराठी अनुवाद अनुवादक अमृतलाल क० पटेल, आर्यसमाज काकड़ वाड़ी बम्बई ४ से १९५५ में प्रकाशित।
७. हरयाणा प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन—दयानन्द मठ, रोहतक—द्वारा प्रकाशित (स्वागत मन्त्री महाशय —भरतसिंह)
८. The Beliefs of Swami Dayanand Saraswati. Vedic Press Ajmer. 1897 & 1919.
„ „ Star Book Depot. Allahabad.



ओ३म्

आर्योद्देश्यरत्नमाला

(ईश्वरादितत्त्वलक्षणप्रकाशिका-आर्य भाषाप्रकाशोज्वला)

१. ईश्वर—जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय[1] सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म[2] जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पापपुण्य के फल ठीक-ठीक पहुंचाना है उसको ईश्वर कहते हैं।

२. धर्म—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों[3] से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही एक मानना योग्य है उस को धर्म कहते हैं।

३. अधर्म—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़ कर और

टि०—(१) "दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत इससे जो रहित हैं, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जाति वाला वृक्ष पाषाणादि, स्वागत अर्थात् शरीर में जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है इससे परमात्मा का नाम अद्वैत है ॥"—सत्यार्थप्रकाश—प्रथम-समुल्लास ॥ "स एष एक एकवृदेक एव ॥" अथर्व, १३, अनु, ८, मन्त्र २० अर्थात् ईश्वर एक ही है ॥ (२) "स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥" श्वेता० ६.८ अर्थात् ईश्वर में कर्म स्वाभाविक है। ईश्वर के कर्म का फल सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय है, ईश्वर में कोई इच्छा नहीं, अतः उसके कर्म का फल केवल सृष्टि रचना आदि ही है ॥ (३) प्रमाणों के लक्षण

पक्षपात सहित अन्यायी होके बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है जो अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोष युक्त होने के कारण वेदविद्यासे विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है वह अधर्म कहाता है।

४. पुण्य—जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान सत्य भाषणादि सत्याचार का करना है उसको पुण्य कहते हैं।

५. पाप—जो पुण्य से उलटा और मिथ्या भाषण आदि करना है उसको पाप कहते हैं।

६. सत्यभाषण—जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उसको सत्यभाषण कहते हैं।

७. मिथ्याभाषण—जो कि सत्यभाषण अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है उसको मिथ्या भाषण कहते हैं।

८. विश्वास—जिसका मूल[४] अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो उसका नाम विश्वास है।

९. अविश्वास—जो विश्वास से उलटा है जिसका तत्त्व[५] अर्थ न हो वह अविश्वास कहाता है।

१०. परलोक—जिसमें सत्य विद्या से परमेश्वर की प्राप्ति हो और इस प्राप्ति से इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होता है उसको परलोक[६] कहते हैं।

११. अपरलोक—जो परलोक से उलटा है जिसमें दुःख विशेष भोगना होता है वह अपरलोक[७] कहाता है।

आगे किये गये हैं—वहीं देखने चाहिये ॥ (४+५) मूल का भाव यहाँ तत्त्व से है, जैसा कि अगले "अविश्वास के लक्षण में जिसका तत्त्व अर्थ न हो वह अविश्वास और जिसका तत्त्व अर्थ है मूल कहाता है ॥ (६+७) परलोक और अपर लोक से अभिप्राय किसी प्राकृतिक भूलोक से नहीं है—यहाँ लोक का अर्थ दर्शन, सम्यक् ज्ञान है और अपर लोक का अर्थ मिथ्या ज्ञान है। इसी कारण मिथ्या-ज्ञान से दुःख रूप फल का भोग जीव को होता है और शुद्ध

१२. जन्म—जिनमें किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है उसको जन्म कहते हैं।

१३. मरण—जिस शरीर की प्राप्ति होकर जीव क्रिया करता है उस शरीर और जीव का किसी काल में वियोग हो जाता है उसको मरण कहते हैं।

१४. स्वर्ग—जो विशेष सुख[1] और सुख की सामग्री को प्राप्त होता है वह स्वर्ग कहाता है।

१५ नरक—जो विशेष दुःख[2] और दुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उसको नरक कहते हैं।

१६. विद्या—जिससे ईश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है उसका नाम विद्या है।

१७. अविद्या—जो विद्या से विपरीत है भ्रम[3], अन्धकार[4] और अज्ञान[5] रूप है उसको अविद्या कहते हैं।

१८. सत्पुरुष—जो सत्यप्रिय धर्मात्मा सिद्धान्त् सबके हितकारी और महाशय[6] होते हैं वे सत्पुरुष कहाते हैं।

तत्वज्ञान से सुख रूप फल का भोग जीव करता है। परलोक=शुद्ध ज्ञान और अपर लोक मिथ्या ज्ञान है॥

(१) अभ्युदय=चक्रवर्ती राज्य पर्यन्त तक का "सुखविशेष" सुख है। यह लौकिक ही है, परन्तु सामान्य सुख से विशिष्ट है॥ (२) विशेष दुःख का अभिप्राय भी साधारण दुःख से बढ़कर आत्मा के घोर पतन से उत्पन्न होने वाले दुःख का है। यह भी लौकिक दुःख की चरम सीमा है॥ (३+४+५) भ्रम, अन्धकार और अज्ञान ये तीनों ही अविद्या के भेद हैं। भ्रम में सूखे वृक्ष के ठंठ को मनुष्य समझ लेना, दूर से नदी के बालू रेत को सूखते हुए वस्त्र समझना भ्रम-भ्रान्ति कहलाता है। अन्धकार का भाव यह है कि बुद्धि के अशुद्ध होने पर किसी पदार्थ के स्वरूप का निश्चय न कर सकना। तथा अज्ञान का भाव यह है ज्ञान न रह जाना अर्थात् अनित्य को नित्य समझना और नित्य को अनित्य जानना। ये तीनों ही अविद्या मूल के आंशिक भेद हैं॥ (६) महाशय का अभिप्राय यह

१९. सत्सङ्गकुसङ्ग—जिस करके झूठ छूट के सत्य की ही प्रतिति होती है उसको सत्सङ्ग और जिस करके पापों में जीव फंसे उसको कुसङ्ग कहते हैं।

२०. तीर्थ—जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का सङ्ग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रयतादि उत्तम कर्म हैं वे सब तीर्थ[७] कहाते हैं क्योंकि इन करके जीव दुःख सागर से तर[८] जा सकते हैं।

२१. स्तुति—जो ईश्वर या किसी दूसरे पदार्थ के गुण, ज्ञान, कथन, श्रवण और सत्य भाषण करना है वह स्तुति[९] कहाती है।

२२. स्तुति का फल—जो गुण ज्ञान आदि के करने से गुण वाले पदार्थों में प्रीति होती है वह स्तुति का फल[१०] कहाता है।

२३. निन्दा—जो मिथ्या ज्ञान मिथ्या भाषण झूठ में आग्रह आदि किया है जिससे कि गुण छोड़ कर उनके स्थान में अपगुण लगाना होता है वह निन्दा कहाती है।

२४. प्रार्थना—अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य के सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं।

२५. प्रार्थना का फल—अभिमान का नाश आत्मा में आर्द्रता,[११]

है कि जिस सज्जन का आशय भाव—वृत्ति लोकोपकारी होती है—वह महाशय कहलाता है॥ (७+८) तीर्थ का अर्थ जल स्थल आदि के विशेष स्थान नहीं, किन्तु उन श्रेष्ठ कर्मों का नाम तीर्थ है जिन पर आचरण करने से मनुष्य दुःखरूप सागर से पार उतर कर उत्तम सुख को प्राप्त कर सकता है॥ (९) स्तुति का अभिप्राय यह है कि गुणों को गुण कहना और मानना तथा दोषों को दोष समझना और कहना स्तुति ईश्वर की भी की जाती है और मनुष्य की भी॥ (१०) जिस रूप में मनुष्य स्तुति करता है उस प्रकार का प्रभाव उसके आत्मा और मन पर पड़ता है—यही फल समझना चाहिये॥ (११) आर्द्रता का अर्थ स्नेह है अर्थात् प्रीति का होना और स्वभाव में

गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है।

२६. उपासना—जिससे ईश्वर[१२] ही के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है उसको उपासना कहते हैं।

२७. निर्गुणोपासना—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग, वियोग हलका, भारी, अविद्या, जन्म, मरण, और दुःखादि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है उसको निर्गुणोपासना कहते हैं।

२८. सगुणोपासना—जिसको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य[१] आनन्द,[२] सर्वव्यापक, एक, सनातन, सर्वकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता, सब जगत् का रचने वाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जान के जो ईश्वर की उपासना करनी है सो सगुणोपासना कहाती है।

२९. मुक्ति—अर्थात् जिससे सब[३] बुरे काम और जन्म मरणादि दुःखसागर से छूटकर सुख[४]रूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सुख ही[५] में रहना है वह मुक्ति कहाती है।

कोमलता होना ।। (१२) उपासना केवल ईश्वर की ही की जाती है, अन्य मनुष्य अपना जड़ मूर्ति आदि की नहीं। स्तुति और प्रार्थना ईश्वर के अतिरिक्त मनुष्य की जा सकती है, परन्तु उपासना ईश्वर की ही की जाती है, क्योंकि उपासना से ईश्वर की प्राप्ति होती है ।।

(१) नित्य पद पृथक् है अर्थात् जो तीनों कालों में एक समान बना रहता है, जिसकी न उत्पत्ति और न विनाश होता है। (२) आनन्द का अभिप्राय है आनन्द स्वरूप। "स्वर्यंस्य च केवलम्"-अथर्व० १०-८-१ अर्थात् केवल आनन्द =सुख स्वरूप ही है। (३) मुक्ति को प्राप्त करने से पूर्व 'सब दुष्ट कर्म' छूट जाते हैं, सम्पूर्ण कर्मों का नाश नहीं। "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" मुण्डक उप० २.२.८ का ९ वम समुल्लास में अर्थ यह किया है—"सब दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते।" (४) सुख स्वरूप का अभिप्राय आन्द-स्वरूप, परमेश्वर में सांसारिक सुख नहीं, किन्तु नित्य रूप से वह आनन्द स्वरूप है। (५) मुक्ति

३०. मुक्ति के साधन—अर्थात् जो पूर्वोक्त ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म[६] का आचरण और पुण्य का करना, सत्संग, विश्वास, तीर्थसेवन,[७] सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट[८] कर्मों से अलग रहना ये सब मुक्ति के साधन कहाते हैं।

३१. कर्त्ता—जो स्वतन्त्रता[९] से कर्मों का करने वाला है अर्थात् जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं वह कर्त्ता कहाता है।

३२. कारण—जिनको ग्रहण करके करने वाला किसी कार्य व चीज को बना सकता है अर्थात् जिसके बिना कोई चीज बन नहीं सकती वह कारण कहाता है सीन तीन[१०] प्रकार का है।

३३. उपादान—जिस को ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे व कुछ बनाया जाय जैसा कि मिट्टी से घड़ा बनता है उसको उपादान[११] कारण कहते हैं।

को प्राप्त होने पर केवल सुख मे ही जीवात्मा रहते हैं। मुक्ति के काल में दुःख नहीं आता, यह ही बात स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश की टिप्पणी में लिखी जा चुकी है। मुक्ति का साधन केवल ज्ञान नहीं है, अपितु ज्ञान और कर्म दोनों हैं। (६) "पवित्रकर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति होती है—" ९ वां समुल्लास। (७) ऊपर २० वीं माला में लिख चुके हैं कि उत्तम कर्म का नाम तीर्थ है, अतः तीर्थ सेवन का भाव यह है कि उत्तम कर्म किये जावें। (८) यहां भी वही भाव है कि मुक्ति के लिये मुमुक्षु को सब दुष्ट कर्म छोड़ कर श्रेष्ठ कर्म अवश्य करते रहना चाहिये। (९) जीव अपने सामर्थ्यानुसार कर्म करने में स्वतन्त्र है, चाहे जैसे अर्थात् असम्भव कर्म नहीं कर सकता। (१०) निमित्त, उपादन और साधारण-ये तीन कारण, कार्य मात्र के प्रति कारण होते हैं। (११) उपादान कारण वह है कि जिस जड़ कारण को लेकर कर्त्ता कार्य को करता है और वह जड़ उपादान कारण कार्य में बना रहता है, जैसे मिट्टी उपादान कारण से घड़ा कार्य बना, तो मिट्टी भी कार्य में बनी रहेगी, कार्य नष्ट होने पर भी मिट्टी बनी रहती है अर्थात् कार्य के नाश होने पर कारण का नाश नहीं होता। कारण के नाश होने पर कार्य का नाश हो जाता है, परन्तु

३४. निमित्त कारण—जो बनाने वाला है जैसा कुम्हार घड़े को बनाता है इस प्रकार के पदार्थों[१२] को निमित्त कारण कहते हैं।

३५. साधारण कारण—जैसे कि दण्ड आदि और दिशा, तथा प्रकाश हैं, इनको साधारण[१३] कारण कहते हैं।

३६. कार्य—जो किसी पदार्थ के संयोग विशेष से स्थूल हो के काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है वह उस कारण[१४] का कार्य कहाता है।

३७. सृष्टि—जो कर्त्ता की रचना[१] से कारण-द्रव्य किसी संयोग विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्तमान में व्यवहार योग्य होती है वह सृष्टि कहाती है।

३८. जाति—जो जन्म से ले के मरण पर्यन्त बनी रहे, जो अनेक

प्रकृति रूप उपादान कारण सृष्टि मे बना रहता है। जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है, तब भी प्रकृति अपने मूल रूप मे बनी रहती है। प्रकृति नित्य है अतः उसका नाश नही होता। (१२) पदार्थों के बनाने वाले कर्त्ता को निमित्त कारण कहते हैं। कार्य बिगड़ने पर भी निमित्त कारण की कुछ हानि नही। (१३) साधारण कारण वह कहाता है कि जो कार्य को बनाने मे निमित्त कारण के समान साधारण रूप मे होता है। दिशा, काल और आकाश कार्य मात्र के प्रति साधारण कारण कहलाते हैं, अर्थात् कार्य बनने से पूर्व उक्त तीनों कारण साधारण रूप से अवश्य रहते हैं और सभी कार्यों के प्रति ये साधारण कारण रहते हैं। (१४) जो जड़ कारण से बने, अर्थात् कार्य से पूर्व उसका कारण अवश्य होता है और जिसमें बनने का सामर्थ्य हो। परन्तु कार्य अनित्य नाशवाला पदार्थ होता है। कार्य मे उपादान कारण बना रहता है।

(१) सृष्टि रचना दो प्रकार की होती है एक "रचनाविशेष" जिसको ईश्वर ही कर सकता है और वही कर सकता है जैसे प्रलयकाल के पश्चात् पुनः संसार की रचना। इस रचना विशेष को जीव नहीं कर सकता, क्योंकि वह अल्पसामर्थ्य है। दूसरी रचना जीव भी करता रहता है। जैसे ईश्वर के रचे हुये

व्यक्तियों में एक रूप[२] प्राप्त हो, ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं वे जाति[३] शब्दार्थ से लिये जाते हैं।

३९. मनुष्य—अर्थात् जो विचार के बिना किसी काम को न करे उसका नाम मनुष्य है।

४०. आर्य्य—जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुण युक्त और आर्य्यावर्त्त देश में सब दिन[४] से रहने वाले हैं उनको आर्य्य कहते हैं।

४१. आर्य्यावर्त्त देश—हिमालय, विन्ध्याचल, सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्र नदी इन चारों के बीच और जहां तक इनका विस्तार है उन के मध्य में जो देश है उसका नाम आर्य्यावर्त्त देश है।

४२. दस्यु—अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डाकू, चोर, हिंसक जो कि दुष्ट मनुष्य है वह दस्यु[५] कहाता है।

४३. वर्ण— जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण[६] किया जाता है वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।

पदार्थों को लेकर जीव नये-नये पदार्थों का निर्माण करता रहता है। ईश्वरीय रचना के बिना जीव को अपनी रचना के लिये पदार्थ ही नहीं मिल सकते। (२) जैसे गौओं में 'गोत्व' एक समान है मनुष्यों में "मनुष्यत्व" एक है। व्यक्ति बहुत हैं, परन्तु उनमें रहने वाला जातिपदार्थ एक ही होता है। (३) ईश्वर ने जो भिन्न अनेक पदार्थ बनाये हैं, वे जाति नाम से कहे जाते हैं, जैसे मनुष्य, जाति, वृक्ष जाति आदि। (४) इसकी टिप्पणी स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में दी जुकी है, अर्थात् किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति है, परन्तु वह सदा से उसी राष्ट्र में रहता है अर्थात् वह आर्य्यावर्त्त में परम्परा से रहता आया है, तो वह भी आर्य कहलावेगा। (५) दुष्ट स्वभाव के मनुष्य को दस्यु कहा जाता है। आर्य और दस्यु दो भिन्न-भिन्न जाति नहीं हैं। मनुष्य जाति सबकी एक है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले आर्य और दुष्ट कर्म करने वाले दस्यु कहलाते है, चाहे दोनों सहोदर भाई क्यों न हों। (६) ग्रहण का अर्थ "स्वीकार" किया जाना है।

४४. वर्ण के भेद—जो ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रादि[७] हैं वे वर्ण कहाते हैं।

४५. आश्रम—जिनमें अत्यन्त परिश्रम[८] करके उत्तम गुणों को ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जायं उनको आश्रम कहते हैं।

४६. आश्रम के भेद—जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये गृहाश्रम, जो विचार[९] के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये संन्यासाश्रम होता है वे चार आश्रम कहाते हैं।

४७. यज्ञ—जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध[१०] पर्यन्त व जो शिल्प[११] व्यवहार और पदार्थ विज्ञान[१२] जो कि जगत् के उपकार[१३] के लिए किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं।

४८—कर्म—जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा विशेष

---

(७) शूद्रादि का अभिप्राय तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को छोड़कर चौथा वर्ण शूद्र है, परन्तु जो चौथे वर्ण के योग्य भी न हों, वह आदि पद से कहे जाते हैं, उसकी गणना शूद्र के साथ की जा सकती है, क्योंकि वह शूद्रों के साथ रहकर उनके अनुसार गुण कर्म स्वभाव बना लेता है। (८) आश्रम में 'श्रम' शब्द से सिद्ध होता है कि चारों आश्रमों में पूर्ण परिश्रम करना पड़ता है तब ही वह आश्रम प्राप्त हो सकता है। केवल प्रवेश करने से ही आश्रम धारण नहीं किया जा सकता। (९) विशेष रूप से ईश्वरोपासना तथा वेद और आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय करना। (१०) चक्रवर्ती राज्यकी प्राप्ति से पूर्व अश्वमेध यज्ञ करना पड़ता है, लौकिक दृष्टि से यह सब से अन्तिम और बड़ा यज्ञ है। (११) शिल्प से अभिप्राय सब प्रकार के यान विमान आदि का निर्माण कारीगरी से है। (१२) पदार्थ विज्ञान का अर्थ सब पदार्थों के मूल तत्त्वों के ज्ञान के लिये खोज करना है। उपकार का भाव यह है कि संसार के समस्त प्राणियों के हित के लिये कार्य करना उपकार कहा जाता है।

(१) योग दर्शन १.२४ के अनुसार कर्म इष्ट, अनिष्ट और मिश्र भेद से

करता है वह कर्म कहाता है शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन[1] प्रकार का है ॥

४९—क्रियमाण—जो वर्त्तमान में किया जाता है वह क्रियमाण कर्म कहाता है ॥

५०—सञ्चित—जो क्रियमाण का संस्कार[2] ज्ञान में जमा होता है उसको सञ्चित संस्कार कहते हैं ॥

५१—प्रारब्ध—जो पूर्व[3] किये हुए कर्मों के सुख-दुःख रूप फल का भोग[4] किया जाता है उसको प्रारब्ध कहते हैं ॥

५२—अनादि पदार्थ—जो ईश्वर, जीव और सब जगत् का कारण[5] है ये तीन स्वरूप[6] से अनादि हैं ॥

५३—प्रवाह से अनादि पदार्थ—जो कार्य जगत्, जीव के कर्म और जो इनका संयोग वियोग है ये तीन परम्परा[7] से अनादि हैं ॥

तीन प्रकार के सत्यार्थप्रकाश ७ म समुल्लास में लिखे हैं ॥ (२) वर्तमानकाल में जो कर्म किया जाता है, उसका 'संस्कार' जो जीव के ज्ञान में जमा रहता है उसको संचित कहते हैं, यह कर्म का रूप नहीं; अपितु कर्म का ज्ञान रूप परिणाम है । इसलिये इसको संस्कार कहा गया है—कर्म नहीं ॥ (३) "पूर्व" शब्द का अभिप्राय पूर्वजन्म में किये गये कर्मों तथा वर्तमानजन्म में भी पहिले किये गये कर्मों का भोग जो कि सुख अथवा दुःख रूप फल है, उसी को प्रारब्ध कहते हैं ॥ (४) फल का भोग केवल सुख अथवा दुःख ही होता है । इसी को प्रारब्ध कहते हैं ॥ (५) "सब जगत् का कारण" से अभिप्राय प्रकृति से है, क्यों तीनों कारणों में ईश्वर और जीव इसी जगह बतला दिये हैं, शेष रहा प्रकृति । अतः इस कारण से प्रकृति का ग्रहण होता है । ये तीनों कारण स्वरूप से ही अनादि हैं ॥ (६) "स्वरूप" का अर्थ है स्वभाव से अनादि, न कि प्रवाह से अनादि ॥ (७) प्रवाह से अनादि उसको कहते हैं जो कि सदा नहीं रहता है, परन्तु उसकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है, परन्तु यह प्रवाह=परम्परा=सिलसिला कभी नहीं रुकता । जैसे दिन और रात्रि का सिलसला सदा रहता है । ऐसे ही सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का

५४—अनादि का स्वरूप—जो न कभी उत्पन्न हुआ हो जिसका कारण कोई भी न हो वे अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध[८] हो वह अनादि कहाता है ॥

५५—पुरुषार्थ—अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है उसको पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५६—पुरुषार्थ के भेद—जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण, करना, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्य विद्या की उन्नति में तथा सब के हित करने में खर्च करना है इन चार प्रकार के कर्मों को पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५७—परोपकार—अर्थात् अपने सब सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिये जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है वह परोपकार कहाता है ।

५८—शिष्टाचार—जिसमें शुभ गुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है वह शिष्टाचार कहाता है ॥

५९—सदाचार—जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है उसको सदाचार कहते हैं ॥

६०—विद्यापुस्तक—जो ईश्वरोक्त सनातन सत्य विद्यामय चार वेद हैं उनको विद्या पुस्तक कहते हैं ॥

६१—आचार्य—जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे उस को आचार्य कहते हैं ॥

सिलसला कभी नहीं टूटता ॥ (८) स्वयंसिद्ध उसको कहते हैं कि जिसका बनाने वाला कोई कारण नहीं होता और स्वभाव=स्वरूप से ही सदा बना रहता है ॥

६२—गुरु—जो वीर्यदान[1] से लेके भोजनादि कराके पालन करता है इससे पिता को गुरु कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा देवे उसको भी गुरु अर्थात् आचार्य कहते हैं ।।

६३—अतिथि—जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है उसको अतिथि कहते हैं ।।

६४—पञ्चायतनपूजा—जीते माता, पिता, आचार्य अतिथि और परमेश्वर को जो यथा योग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है उसको पञ्चायतन[2] पूजा कहते हैं ।।

६५—पूजा—जो ज्ञानादि गुण वाले का यथायोग्य सत्कार करना है उसको पूजा कहते हैं ।।

६६—अपूजा—जो ज्ञानादि रहित जड़ पदार्थ और जो सत्कार के योग्य नहीं है उसका जो सत्कार करना है वह अपूजा कहाती हैं ।।

६७—जड़—जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है उसको जड़ कहते हैं ।।

६८—चेतन—जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है उसको चेतन[3] कहते हैं ।।

६९ –भावना—जो जैसी चीज़ हो उसमें विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रम[4] रहित हो अर्थात् जैसे को वैसा

---

(१) वीर्यदान का अभिप्राय गर्भाधान संस्कार से है ।। (२) "पञ्चायतन" का भाव यह है कि ये पांच पदार्थ पूजा=सत्कार के स्थान हैं । इनमें ईश्वर की उपासना को पूजा कहा जाता है और माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा को पूजा कहते हैं ।। (३) चेतन का अर्थ यह है कि जिसमें स्वभाव से ज्ञान और क्रिया रहे । चेतन शब्द से ईश्वर और जीव दोनों को ग्रहण होता है । जीव में ज्ञान और क्रिया सीमित रूप में हैं और ईश्वर में असीमित हैं । ईश्वर में क्रिया होने से ही सृष्टि की रचना विशेष को वह करता है ।। (४) भ्रमरहित का अर्थ है यथार्थ, जिसमें किसी प्रकार का संशय, अज्ञान

हो समझ लेना उस को भावना कहते हैं ॥

७०—अभावना—जो भावना से उलटी हो अर्थात् मिथ्याज्ञान से अन्य निश्चय मान लेना है जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेना है उस को अभावना कहते हैं ॥

७१—पण्डित—जो सत् असत् को विवेक[५] से जानने वाला धर्मात्मा, सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान् और सबका, हितकारी है उसको पण्डित कहते हैं ॥

७२—मूर्ख—जो अज्ञान, हठ, दुराग्रहादि दोष सहित है उसको मूर्ख कहते हैं ॥

७३—ज्येष्ठ-कनिष्ठ व्यवहार—जो बड़े और छोटों से यथायोग्य परस्पर मान्य करना है उसको ज्येष्ठकनिष्ठ व्यवहार कहते हैं ॥

७४—सर्वहित—जो तन, मन और धन से सब के सुख बढ़ाने में उद्योग करना है उसको सर्वहित कहते हैं ॥

७५—चोरी त्याग—जो स्वामी की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ का ग्रहण करना है वह चोरी और छोड़ना त्याग कहाता है ॥

७६—व्यभिचार त्याग—जो अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल[१] के बिना वीर्य दान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के बिना विवाह करना है वह व्यभिचार कहाता है उस को छोड़ देने का नाम व्यभिचार त्याग है ॥

७७—जीव का स्वरूप—जो चेतन[२], अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है वह जीव कहाता है ॥

और भ्रान्ति न होवे ॥ (५) विवेक का भाव यह है कि "पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जान कर उसकी आज्ञा पालन और उपासना में तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना विवेक कहाता है।" —सत्यार्थप्रकाश का ६ वां समुल्लास ॥

(१) गर्भाधान के समय को ऋतुकाल कहा गया है, इसको जानने के लिये संस्कारविधि ग्रन्थ में गर्भाधान संस्कार देखना चाहिये ॥ (२) चेतन

७८—स्वभाव—जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उसका वह गुण भी नहीं छूटता इसलिये इस को स्वभाव कहते हैं ॥

७९—प्रलय—जो कार्य जगत् का कारण रूप होना अर्थात् जगत् का करने वाला ईश्वर जिन-जिन कारणों[3] से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्यों को रच के यथावत् पालन करके पुनः कारण रूप करके रखता है उसका नाम प्रलय है ॥

८०—मायावी—जो छल-कपट स्वार्थ में प्रसन्नता, दम्भ,[4] अहङ्कार, शठतादि दोष हैं और जो मनुष्य इनसे युक्त हो, वह मायावी कहलाता है ॥

८१—आप्त—जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा, सब पर कृपा दृष्टि से वर्त्तमान होकर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्या रूप सूर्य्य का प्रकाश सदा करे उस को आप्त[5] कहते हैं ॥

८२—परीक्षा—जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, वेदविद्या, आत्मा की शुद्धि और सृष्टि[6] क्रम से अनुकूल विचार के सत्यासत्य का यथावत्

का अर्थ है जिसमें ज्ञान और क्रिया करने का धर्म स्वभाव से होवे। जीव में यह दोनों धर्म सीमित हैं, परन्तु ईश्वर में ये दोनों धर्म अनन्त हैं। "जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता, इसलिये वह विभु तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है ॥ "सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास ॥ (३) कारणों का अभिप्राय यही है कि प्रकृति-परमाणु रूप नित्य द्रव्यों से सृष्टि ईश्वर बनाता है, स्थिति के समय उन कारणों सहित जगत् कार्य रूप में रहता है, प्रलय के समय उन कारणों का कार्य नष्ट होकर कारण रूप ही बना रहता है ॥ (४) दम्भ कहते हैं कि जिस बात को जाने नहीं और जानने का ढकोसला, कपट, आडम्बर दिखावा करे ॥ (५) आप्त का अर्थ पहिले लिख चुके हैं अर्थात् सत्यवादी, सत्यमानी और सत्यकारी होकर लोक कल्याण के लिये वेदार्थानुकूल उपदेश करने वाला विद्वान् ॥ (६) सृष्टि क्रम का अर्थ है सृष्टि में देखा जाने वाला सत्य नियम, "जैसे कोई

निश्चय करना है उसको परीक्षा कहते हैं ॥

८३—आठ प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये आठ प्रमाण हैं। इन्हीं से सब सत्यासत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है ॥

८४—लक्षण—जिससे जाना जाय, जो कि उसका स्वाभाविक गुण है, जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है, इसको लक्षण कहते हैं ॥

८५—प्रमेय—जो प्रमाणों से जाना जाता है, जैसे कि आंख का प्रमेय रूप अर्थ है जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है, उसको प्रमेय कहते हैं ॥

८६—प्रत्यक्ष—जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रियों और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है; उस को प्रत्यक्ष[1] कहते हैं ॥

८७—अनुमान—किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के अंग को प्रत्यक्ष देख के पश्चात् उसके अदृष्ट अङ्गों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है; उसको अनुमान[2] कहते हैं ॥

८८—उपमान—जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के तुल्य नील गाय होती है, ऐसे उपमा से जो साहृश्य[3] ज्ञान होता है; उसको उपमान कहते हैं ॥

कहे कि बिना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टि क्रम से विरुद्ध होने से असत्य है" सत्यार्थप्रकाश ३ समुल्लास ॥ (७) जिस पदार्थ की जांच की जावे, उसको "प्रमेय" कहते हैं, जिस साधन के द्वारा प्रमेय की जांच की जावे, वह "प्रमाण" कहाता है, जो जांच करने वाला चेतन होता है उसको "प्रमाता" कहते हैं और जांच का जो परिणाम=फल होता है उसको "प्रमिति" कहा जाता है। सम्पूर्ण अर्थ तत्त्व इन चार भागों में पूर्ण हो जाता है ॥

(१) "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्"। न्यायदर्शन० १-१-४। (२) "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च"। न्या० १-१-५। (३) "प्रसिद्धसाधर्म्यात्सा-

८९—शब्द—जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और आप्त मनुष्य का उपदेश है; उसी को शब्द[४] प्रमाण प्रमाण कहते हैं ।।

९०—ऐतिह्य—जो शब्द प्रमाण के अनुकूल हो, जो कि असम्भव और झूठ लेख न हो; उसी को ऐतिह्य[५] (इतिहास) कहते हैं ।।

९१—अर्थापत्ति–जो एक बात के कहने से दूसरी बिना कहे समझी जाय; उसको अर्थापत्ति[६] कहते हैं ।।

९२—सम्भव—जो बात प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो; वह सम्भव[७] कहाता है ।।

९३—अभाव—जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले आ, उसने वहाँ देखा कि यहां जल नहीं है, परन्तु जहाँ जल है वहाँ से ले आना चाहिये; उसे अभाव[८] प्रमाण कहते हैं ।।

ध्यसाधनमुपमानम्" । न्या० १-१-६ । (४)"आप्तोपदेशः शब्दः"न्या० १-१-७ । (५-६-७-८) । न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् । न्या० २-२-१। इन आठों प्रमाणों की व्याख्या सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में देखनी चाहिये, न्यायदर्शन में—"शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्ति-संभवाभावानर्थान्तरभावाच्चप्रतिषेधः । २-२-२,अर्थात् ऐतिह्यप्रमाण का अन्तर-भाव शब्द प्रमाण में, अर्थापत्ति, संभव और अभाव का अन्तरभाव अनुमान प्रमाण में कर देने से भी इन चारों प्रमाणों का निषेध नहीं हो सकता । अर्थात् कुल आठ प्रमाण हैं । परन्तु कुछ दार्शनिक एक प्रकार से ४ प्रमाण-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द मानते हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ऐतिह्य प्रमाण की गणना शब्द में कर लेते हैं क्योंकि ऐतिह्य=इतिहास भी शब्द-प्रमाण रूप ही है । इस प्रकार अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना अनु-मान में कर लेते हैं, क्योंकि इन तीनों में अनुमान का भाग मिला रहता है। कुछ सज्जन उपमान प्रमाण का अन्तरभाव अनुमान में करके तीन ही प्रमाण मानते हैं । और कुछ लोग अनुमान को भी प्रत्यक्ष में मिलाकर दो ही प्रमाण प्रत्यक्ष और शब्द ही मानते हैं, जो ईश्वर को नहीं मानते वे प्रत्यक्ष को ही एक प्रमाण मानते हैं अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान दो को ही । परन्तु ऋषि दयानन्द

९४—शास्त्र—जो सत्य विद्याओं के प्रति पादन से युक्त हो और जिसे करके मनुष्यों को सत्य सत्य शिक्षा हो; उसको शास्त्र[९] कहते हैं ।।

९५—वेद—जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्य[१०] सत्य का ज्ञान होता है; उनको वेद कहते हैं ।।

९६—पुराण—जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि[१] ऋषिमुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं; उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं ।।

९७—उपवेद—जो आयुर्वेद-वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद-शास्त्रविद्या, राज-धर्म, जो गन्धर्ववेद-गान शास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र हैं; इन चारों[२] को उपवेद कहते हैं ।।

९८—वेदाङ्ग—जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष[३] सनातन शास्त्र हैं; उनको वेदाङ्ग कहते हैं।

ने ८ प्रमाण स्वीकार किये हैं, क्योंकि थोड़ा साम्य होने पर भी लोक व्यवहार के लिये भिन्नता होने पर प्रमाण आठों मानने होंगे। चार प्रमाणों से कम प्रमाण नहीं हैं। इसका विस्तार सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में देखना चाहिये। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी यह प्रकरण दिया गया है। (९) शास्त्र शब्द से सत्यविद्याओं के मूल चारों वेदमन्त्रसंहिताएं और वेदानुकूल ऋषियों के बनाये आर्षग्रन्थ भी शास्त्र नाम से कहे जाते हैं। (१०) वेद की व्याख्या स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में की जा चुकी है। यहाँ "सत्यासत्य" का भाव यह है कि वेद से जहां यह ज्ञान होता है कि यह सत्य है वहां यह भी ज्ञान होता है कि यह असत्य है। जैसे दीपक से अदृष्ट पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वैसे ही यह भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक पदार्थ यहाँ नहीं है। भाव और अभाव दोनों का बोध निश्चय रूप में वेद से ही होता है। (१) ब्राह्मण आदि ग्रन्थों की व्याख्या स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में की जा चुकी है। (२) प्रत्येक उपवेद में अनेक ग्रन्थ हैं, किसी एक ही ग्रन्थ का नाम उपवेद नहीं है। (३) आर्ष का अभिप्राय यह है कि जो ग्रन्थ ऋषियों ने वेदानुकूल बनाये हैं उनको आर्ष ग्रन्थ कहा जाता है। वेदाङ्गों में भी प्रत्येक अंग में अनेक

९९—उपाङ्ग—जो ऋषि मुनिकृत—मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं; उनको उपाङ्ग[४] कहते हैं ॥

१००—नमस्ते—मैं तुम्हारा मान्य[५] करता हूँ ॥

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्त्तिमगादियम् ॥

श्रीयुत महाराजा विक्रमादित्य जी १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष सप्तमी बुधवार के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्य्योद्देश्यरत्नमाला—पुस्तक प्रकाशित किया ॥

ग्रन्थ हैं। (४) उपाङ्गों में एक-एक ही ग्रन्थ दर्शन अथवा शास्त्र नाम से कहा जाता है। (५) "नमस्ते" शब्द वेदों, शास्त्रों तथा समस्त संस्कृत साहित्य में मिलता है। छोटा बड़े को बड़ा छोटे को, बराबर वाले परस्पर, पति को पत्नी और पत्नी को पति 'नमस्ते' शब्द से आदर देते हैं। 'नमः' शब्द को न लिख कर हम केवल 'नमस्ते' शब्द जहाँ आया है, वे ही कुछ मन्त्रांश लिखते हैं॥ 'नमस्ते'—यजु० ३-३३-८ 'नमस्ते आयुषाय' ॥ यजु० १६-१४ 'नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः।', यजु० १६-१ 'नमस्ते भगवन्नस्तु'॥ यजु० ३६-२१ 'नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः'॥ यजु० ३७-२० तथा ३८-१६ 'भगवन्' शब्द से ईश्वर और ऐश्वर्य शाली जीव का भी ग्रहण होता है जैसे—'भग एव भगवान् अस्तु'—यहां 'भगवान्' ईश्वर का वाचक है तथा 'वयं भगवन्तः स्याम'—यहां भगवन्तः से जीवों का ग्रहण है। दोनों का प्रमाण ऋ० ७-४१-५ में एक ही जगह मिलता। इस मन्त्र को ऋषि दयानन्द ने गृहस्थाश्रम प्रकरण में प्रातः-काल में बोले जाने वाले मन्त्रों में दिया है, वहीं अर्थ भी दिये गये हैं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला :—विभिन्न संस्करण और अनुवाद

(डा० भवानीलाल भारतीय एम० ए० पी० एच० डी० पाली-राजस्थान)

आर्यों के १०० मन्तव्यों का संग्रह महर्षि दयानन्द ने श्रावण शुक्ला सप्तमी बुधवार सं १९३४ वि० को तैयार किया, जैसा कि ग्रन्थान्त की पुष्पिका से ज्ञात होता है। ग्रन्थान्त में स्वामी जी लिखते हैं—

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्ककस्य भूपतेः।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम्॥

इस लघु किन्तु महत्वपूर्ण ग्रन्थ के अब तक निम्न संस्करण और अनुवाद छप चुके हैं—

१. वैदिक यंत्रालय, अजमेर। २. आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर। ३. सार्वदेशिक प्रकाशन, दिल्ली। ४. गोविन्द आदर्श, अलीगढ़। ५. आर्य पुस्तकालय, आगरा। ६. रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर। ७. सम्पा० जगत्कुमार शास्त्री गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली। ८. कुम्भ प्रचार संस्करण परोपकारिणी सभा, अजमेर। ९. उर्दू अनुवादक महता राधाकृष्ण। १०. मराठी अनुवाद (आर्यसमाज, धार) वैदिक यंत्रालय, अजमेर। ११. (ज्ञानचक्षु) गुजराती अनुवादक बैजनाथ अवधवासी, गुर्जर विजय प्रेस, अहमदाबाद १८९३ ई० १२. आर्यकुमार श्रुति अथवा आर्य मन्तव्य दर्पण मेधारथी स्वामी (विशद व्याख्या) १३. तृतीय हरयाणा आर्यमहासम्मेलन चरखी-दादरी—स्वागतमंत्री आचार्य श्री शिवकरण २५-१-५७

14. Aryoddeshya Ratnamala or the garland of the gems of the Aryan Mission by Maharshi Dayanand Saraswati. Translated into English by Bawa Arjan Singh, late lamented Editor, Arya Patrika, printed and published by the Vedic Yantralaya, Ajmer.



आर्य्य समाज के नियम

१. सब सत्यविद्या और जो पदाथ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल[1] परमेश्वर है ॥

---

(१) संसार में दो प्रकार के जड़ पदार्थ हैं—एक नित्य और दूसरे अनित्य। नित्य पदार्थ कारण रूप हैं और अनित्य कार्य रूप हैं। नित्य पदार्थों को दार्शनिक परिभाषा में, सत्व, रजः और तमः इन तीन मूल नित्य तत्त्वों के समूह को सांख्य दर्शन में प्रकृति कहा गया है। न्याय दर्शन में इन्हीं मूलतत्त्वों को परमाणु नाम दिया है। केवल नाम में भिन्नता है, वस्तुसत्ता में नहीं। वेद में इनको 'स्वधा' और 'त्रिधातु' आदि नाम से कहा गया है। उपनिषदों में इन को सत्, असत्, अव्यक्त आदि अनेक नामों से वर्णित किया हुआ है। इन्हीं मूल तत्त्वों से चेतन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर कार्य रूप जगत् का निर्माण, चेतन अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्य जीवों को उनके कर्मों के फल भोग और मोक्ष प्राप्ति के लिए करता है। प्रलयकाल में यह सृष्टि के कार्य पदार्थ अपने मूल कारणों से विलीन हो जाते हैं। जीवों को जगत् के पदार्थों से काम लेने नये-नये पदार्थों का निर्माण करने तथा मोक्ष प्राप्तिका साधन वेद ज्ञान ईश्वर देता है। इसी वेदज्ञान का नाम सत्य विद्याएँ हैं। सत्यविद्या के आधार पर जीव अनेक विद्याओं को प्राप्त करते हैं। इसका भाव यह है कि संसार में जितने पदार्थ ईश्वर रचित और जीव निर्मित हैं और जितनी जीवों द्वारा प्रचारित विद्याएँ तथा सत्यवेदविद्याएँ हैं, उन सबका आदि=प्रथम=मूल कारण ईश्वर है। यद्यपि जैवी विद्याओं और जीवों द्वारा निर्मित पदार्थों का कारण=निमित्त जीव हैं, परन्तु यदि परमेश्वर जीवों को सत्यविद्या न देवे और मूल तत्त्वों से सृष्टि की रचना न करे, तो जगत् का व्यवहार चल ही नहीं सकता। अतः जीव इन ईश्वर द्वारा ही सृष्टि रचित पदार्थों से नवीन पदार्थ रचना और वेदविद्या से ज्ञान प्राप्त करके ही नवीन विद्याओं का कारण (निमित्त) जीव हैं, परन्तु जीव इन विद्याओं और पदार्थों का मूलकारण नहीं है। वेद विद्या के प्रकाश और प्रकृति परमाणुओं

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त,[२] निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना

से सृष्टि के रचने का मूल कारण=निमित्त ईश्वर है। इतना होते हुए भी अर्थात् ईश्वर मूल कारण होते हुए भी आदि मूल कारण है, क्योंकि मूल तत्वों के संयोग द्वारा सृष्टि रचना कार्य प्रथम ईश्वर ही करता है और ईश्वर ही प्रथम सृष्टि की रचना के आरम्भ में ही जीवों को अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा वेदविद्या का ज्ञान प्रथम देता है। उसके पश्चात् उस सत्य वेदविद्या से अनेक विद्याओं का प्रचार सृष्टि में होता है। अतः सिद्ध होता है कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब सत्य विद्याओं (वेद चतुष्टय) और जगत् के पदार्थों का प्रथम=आदि मूल कारण परमेश्वर है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवों तथा प्रकृति परमाणुओं की नित्य स्वतन्त्र सत्ता है, उनकी रचना ईश्वर नहीं करता, परन्तु जड़ तत्त्व नियमपूर्वक सृष्टि रचना में समर्थ नहीं होते और न ही अल्पज्ञ जीव पदार्थों के जानने में स्वयं समर्थ हैं। इसलिये प्रथम सृष्टि के आदि में ही इन सत्य विद्याओं और सृष्टि के तत्त्वों से प्रथम निमित्त कारण के रूप में सृष्टि रचना करने में ईश्वर ही आदिमूल कारण=निमित्त है। ओ३म् प्रतिष्ठ-यजुर्वेदे-'प्रतिष्ठा-मूलम्-त्रिकाण्डशेषे' (अर्थात् ओ३म् ही मूल है)। (२) अनन्त शब्द का भाव यह है कि ईश्वर के सब गुण, कर्म और स्वभाव सब प्रकार की सीमा से बाहर हैं, अर्थात् अन्त वाले नहीं हैं, इसीलिये ईश्वर का यह नाम भी "अनन्त" कहा जाता है। (३) प्रमाणों की व्याख्या आर्योद्देश्यरत्नमाला में की जा चुकी है, तथा सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में भी ऋषि दयानन्द ने की है, अतः वहीं से विस्तारपूर्वक देखनी चाहिये। (३) सुनने-सुनाने से भी वेद विद्या का बोध होता है, इसलिये वेद

और सुनना[3] सुनाना सब आर्य्यों का परम[4]धर्म है ।।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ।।

६. संसार[5] का उपकार करना इस समाज[6] का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक[7] उन्नति करना ।।

७. सबसे प्रीति[8]पूर्वक धर्मानुसार[9] यथायोग्य[10]वर्त्तना चाहिये ।।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र[11]रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।।

के पढ़ने पढ़ाने के समान ही वेद का सुनना और सुनाना भी परम धर्म है। (४) परम धर्म का अर्थ यह है कि यही सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है। (५) संसार के उपकार करने रूप नियम से यह सिद्ध होता है कि आर्यसमाज का संघटन किसी देश, सम्प्रदाय और समाजों तक सीमित नहीं है। (६) आर्यसमाज का संघटन कोई विशेष मत-सम्प्रदाय और दल नहीं है किन्तु समाज है। (७) सामाजिक शब्द से सब प्रकार की सामूहिक उन्नति की प्रणाली तथा आर्थिक और प्रशासनिक उन्नति ग्रहण की जाती है। (८-९-१०) 'प्रीतिपूर्वक' शब्द मनुष्य मात्र के प्रति सामान्य बर्त्ताव को बतलाता है। 'धर्मानुसार' से वर्णाश्रम मर्यादा का बोध होता है और 'यथायोग्य' पद से देश, काल, अवस्था, आर्य, दस्यु, मित्र तथा शत्रुओं के साथ जो व्यवहार करना चाहिये, उसका ज्ञापन होता है। (११) जीव अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु मनुष्य समाज में बन्धु बान्धवों आदि विभागों में मिल कर रहता है। अकेला सब कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता। परस्पर मिलकर सब एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हैं। इसलिये मनुष्यों को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके निजी कार्य से किसी दूसरे के निजी कार्य, सामाजिक कार्य और राष्ट्र के कार्य में बाधा न पड़े, अतः उसको सबके साथ मिल कर काम करने के सम्बन्ध में परतन्त्र रहना चाहिये। यह परतन्त्रता मनुष्य के कार्य की बाधक नहीं, किन्तु लाभदायक है। तन्त्र शब्द का अभिप्राय नियम से नियन्त्रित रहना है।

आर्यसमाज के साहित्य में क्रान्ती लाने के लिये

"मधुर-लोक;; मासिक पत्र का मई १९६९ का नया विशेषांक

"आर्यवीर"

इस अंक में आर्यवीरों की जीवनियां और उनके कर्त्तव्य पढ़ेंगे। यह विशेषांक सभी दृष्टियों से एक क्रांतिकारी विचारों से परिपूर्ण होगा। आर्य-साहित्य में नवीन एवं स्थायी वृद्धि में सहायक होगा। इस अंक की पृष्ठ सं० २०० होगी। टाईटिल पेज तिरंगा और विशेष आकर्षक होगा। एक प्रति का मूल्य २) रु० होगा। दस प्रति का मूल्य १५) रु०, पच्चीस प्रति का मूल्य ३२) रु० पचास प्रति का मूल्य ६०) रु० तथा सौ प्रतियों का मूल्य १००) रु० होगा। "मधुर-लोक" के स्थायी ग्राहकों को यह विशेषांक बिना मूल्य भेंट किया जायेगा। अतः ५) रु० वार्षिक शुल्क भेज स्थायी ग्राहक बनें।

यह सुविधा केवल उन्हीं को मिलेगी जिनकी धन-राशि ३१ मार्च १९६९ तक मिल जायेगी।

"मधुर-लोक" कार्यालय आर्यसमाज बाजार सीताराम दिल्ली

प्रचारक की आवश्यकता है

उच्चकोटि के विद्वान्, वेदविद्या विषयज्ञाता, शास्त्रार्थ महारथी, मर्यादा-पुरुष, स्वस्थ, और प्रचारक उत्साही पंडित की।

दक्षिणा योग्यता अनुसार। प्रार्थनापत्र में आयु व कार्यों का विवरण लिखें। पत्र व्यवहार का पता—मन्त्री आर्यसमाज मन्दिर, महर्षिदयानन्द मार्ग [कांकरिया] अहमदाबाद—२२

जिन ग्राहक महानुभावों का शुल्क समाप्त हो चुका है वे अपना वार्षिक शुल्क १०) शीघ्र भेजने की कृपा करें।

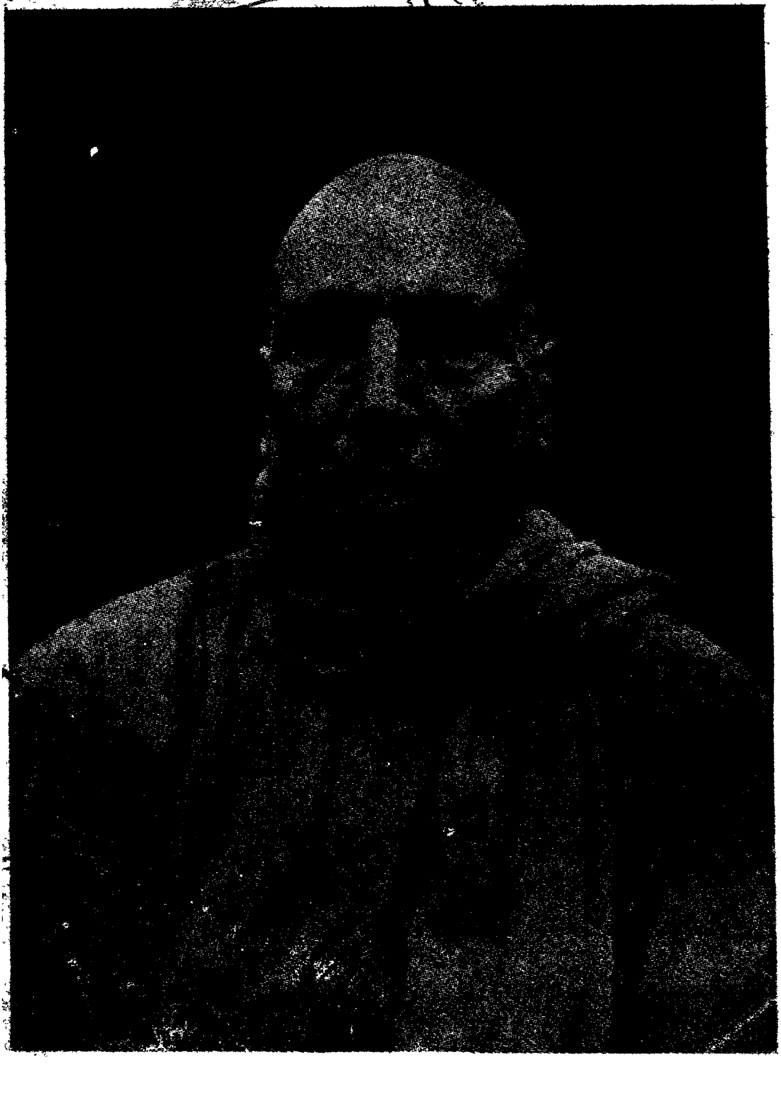
—व्यवस्थापक

"आर्यमर्यादा" हिन्दी साप्ताहिक रजि० नं० डी-२०८
१५ हनुमान् रोड नई दिल्ली-१ दूरभाष · ४८१५० १६ फरवरी ६९

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिये जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सम्राट् प्रेस, पहाडी धीरज, दिल्ली-६ में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित।

आर्य मर्यादा
साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
(वर्ष ५—अङ्क १७ वार्षिक शुल्क १०)





ओ३म्

संन्यासी का परमधर्म

यद्देवा यतया यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्य्यमजभर्त्तन ।।

ऋ० मं० १०।सू०।७२।मं० ७

अर्थ—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोगो ! तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वय प्रकाशस्वरूप सूर्यादिका प्रकाशक परमात्मा है उसको (आ, अजभर्त्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ कैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उनको सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेश से सयुक्त किया करो यही तुम्हारा परमधर्म है ।

—सन्यास प्रकरण (संस्कारविधि)

संन्यासी कैसे होते हैं

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्मधीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ।।

ऋ० ७.१३.१

भावार्थ— हे गृहस्थो ! जो अग्नि के तुल्य विद्या और सत्यधर्म के प्रकाशक, अधर्म के खण्डन और धर्म के मण्डन से सबके शुद्धिकर्त्ता, बुद्धिमान्, निश्चित ज्ञान देने वाले, अविद्वत्ता के विनाशक, मनुष्यों को विज्ञान और धर्म का धारण कराते हुए संन्यासी हों उनके सङ्ग से सब तुम लोग बुद्धि को धारण कर निस्सन्देह होओ । जैसे राजा युद्ध की सामग्री को शोभित करता है वैसे उत्तम संन्यासी जन सुख की सामग्री को शोभित करते हैं ।।

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)

उनका संन्यास लेना सफल है

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्च कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ।। —मनु० ६.७५

जो निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक्, वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्त्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्ति रूप पद को प्राप्त होते हैं, उनका संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य हैं ।। —संन्यास प्रकरण (संस्कारविधि)

प्रकाशकीय निवेदन

ऋषि दयानन्द संस्कारविधि के सन्यास प्रकरण के अन्त में यह लिखते हैं—"हे जगदीश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव अजर अमर पवित्र परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के परम मुक्ति सुख को प्राप्त कराते रहिये ।"

ठीक इस ऋषि भाव को स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने अपने जीवन में चरितार्थ किया था । इस संस्मरण अंक में भिन्न भिन्न लेखक महानुभावों के विचारों को पाठक ध्यान से पढ़ेंगे तो अनुभव करेंगे कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ऋषि वचनों पर आरूढ रहे और अन्त में परम पद को प्राप्त हो गये ।





इस अंक के मुख्य सम्पादक—

(श्री स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती, अध्यक्ष दयानन्द मठ, दीना नगर)

संन्यासी की सहन-शीलता

वैदिक-धर्म में मनुष्य समाज को वर्ण तथा आश्रमों में विभक्त किया गया है। मनुष्य समाज के प्रबन्ध तथा सुख के लिए यह बहुत ही महत्व की बात है। धर्मशास्त्र में प्रत्येक वर्णाश्रम के कुछ कर्तव्य तथा अधिकार बताये हैं। अन्याश्रमों की भाँति संन्यासी के कर्तव्यों का बहुत विस्तार से वर्णन है। और वे सभी कर्त्तव्य कर्म-धर्म, नाम में आरों की भांति संन्यासी की सहनशीलता मैं जुड़े हुए हैं। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की आर्य तथा पौराणिक संन्यासियों में बहुत प्रतिष्ठा थी और इसका कारण था उनका तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, नियमित जीवन, ये सभी गुण सहनशीलता के सहवासी हैं। पूर्ण सहन-शीलता का नैरन्तर्य ही समता है जिसे गीताकार ने "समत्वं योगमुच्यते" कहा है अर्थात् योगी वह है जिसके मन की शान्ति-समता एकरस रहने को भूख, प्यास, सुख, दु:ख, काम, क्रोध मानापमान भंग नहीं कर सकते। मनुष्य-जीवन में यह सर्वोत्तम स्थिति है यही स्थिति मुक्तिमार्ग को प्रशस्त करती है। वास्तव में इस अवस्था को पाने के लिए ही संन्यास है और इस अवस्था में पहुंचने के पश्चात् मनुष्य जिस सुख, आनन्द का अनुभव करता है उस का शतांश भी इन सांसारिक भोगों में नहीं है। यह वह स्थिति अवस्था है जहां से गिरने का भय नहीं रहता। हमारे नेता को पारखी-जन इस स्थिति में देखकर आश्चर्य करते और श्रद्धा से नत-मस्तक हो जाते हैं। क्योंकि इस असामान्य अवस्था स्थिति में जीवन

की सभी क्रियायें-चेष्टाएं जन-सामान्य से भिन्न होनें लगती हैं। स्वामी जी महाराज का सारा जीवन इसी प्रकार की क्रियाओं का समूह था।

गर्मी के दिनों में स्वामी जी महाराज दयानन्द मठ में एक आम वृक्ष के नीचे बैठकर पढ़ने लिखनें का कार्य दिनभर करते रहते थे। वृक्ष की शाखाओं के बीच से कभी कभी थोड़ी बहुत देर के लिए धूप भी आ जाती। इस वृक्ष की छाया थी भी बिरली। एक दिन लाला अलखधारी जी वकील प्रधान आर्यसमाज गुरुदासपुर दोपहर में स्वामी जी महाराज के समीप बैठे बातें कर रहे थे कि स्वामी जी महाज पर धूप आ गई। प्रधान जी नें कहा—कि आपका तख्त आगे पीछे छाया में कर देते हैं। स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया—यह थोड़ी देर में हट जाएगी। यहां दिनभर यही हाल रहता है धूप आती जाती रहती है किन्तु आप अपने एक स्थान पर बैठे अपना कार्य निरन्तर करते रहते हैं। धूप छाया का कोई प्रभाव इन पर न होता। शीतकाल में लोग अग्नि तापते हैं अधिक गर्मी में लोग पंखा झलते हैं। कितनी ही ठण्ड हो वे अग्नि के पास कभी भी नहीं बैठते थे। अधिक गर्मी में भी कभी हाथ में पंखा लेकर नहीं झला। पसीना आने पर अंगोछे से पोंछ देते थे।

समय पर भोजन न मिलने पर कई कई दिन भूखे रहते और कभी कोई शिकायत किसी से न करते। दीना नगर आर्यसमाज के प्रधान श्री लाला देवदत्त जी ने सुनाया—मठ की स्थापना से पूर्व हमारी प्रार्थना पर स्वामी जी महाराज उत्सव में पधारे। दोपहर कार्यवाही लम्बी होनें से तथा भूल जाने से दो दिन तक उन्हें भोजन न करा सके। शुक्रवार सायङ्काल आये और सोमवार भूखे ही लाहौर लौट गये। समय पर व्याख्यान देतें रहे। उनके भोजन न करनें पर भी उनकी बातचीत और आकृति में कोई अन्तर न था। किन्तु

स्थानिक अधिकारी ये सोचते थे कि अब स्वामी जी महाराज हमारी प्रार्थना पर कभी न आएंगे। अगले वर्ष फिर आर्यसमाज की प्रार्थना पर पूर्ववत् पधारे जिससे यहां के आर्यजन आपके बहुत ही श्रद्धालु बने।

लाहौर में रहते हुए कई वर्ष तक आप आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता रहे, जबकि पंजाब पेशावर से देहली तक एक था। इस सभा का कार्य तथा शक्ति उस समय बहुत बड़ी थी। स्वामी जी महाराज स्वयं स्वामी वेदानन्द जी महाराज, महाशय कृष्ण जी, पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव जी मोरपुरी, पं० प्रियव्रतजी वेदवाचस्पति, पं. यशपालजी सिद्धान्तालंकार, पं. चिरंजीलाल जी 'प्रेम', पं. शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी इस प्रकार सैंकड़ों आर्य विद्वान् वैदिक धर्म के प्रचारार्थ पंजाब तथा उसके बाहर निरन्तर सभा के प्रोग्रामों पर घूमते रहते थे। एक बार आर्यसमाज अजनाला अमृतसर के उत्सव पर उपदेशकों के साथ स्वयं भी पहुंचे। सायंकाल बाहर घूमने गये साथ में महाशय बिहारीलाल जी भजनीक भी चल पड़े। अन्य एक दो व्यक्ति भी साथ थे। श्री महाशय बिहारीलाल जी ने मार्ग में अपने कष्ट कहने आरम्भ किए कि आप हमें सूदूर ऐसे ग्रामों का प्रोग्राम दे देते हैं जहाँ न रेल न मोटर न टांगा न कुली ही मिलता है हम धक्के खाते फिरते रहते हैं आप लाहौर में कुर्सी पर बैठे रहते हैं आप को क्या पता ग्रामप्रचार में क्या कठिनाई आती है। अन्य कई कटु और अशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया। कई साथ चलने वाले महाशय बिहारीलाल जी को रोकने लगे स्वामी जो ने उसे न रोकनें का इशारा किया उसकी अशिष्ट तथा कटु भाषा में कही बातों को शान्ति से सुनते रहे और उस पर कोई रोष न किया। दीनानगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति मठ में स्वामी जी महाराज के निकट बैठकर वार्तालाप करते थे दिन में मास्टर बख्शिश राम जी, लाला देवराज जी

गुप्ता, लाला देवदत्त जी, श्री धर्मदत्त जी तथा भद्रसेन जी ओहरी के नाम विशेष हैं। लाला धर्मदत्त जी एक दिन एक समाचार पत्र लाए और कहा कि इसमें आपको कई गालियाँ और अपशब्द लिखे हैं और लिखा है कि एक गीदड़ रंगा साधु दीनानगर में आ गया है जिसने मुसलमान रियासत हैदराबाद को तबाह कर दिया है अब इधर भी उनसे ऐसे ही कारनामों की आशा रखनी चाहिए। इस प्रकार मुसलमानों को खूब भड़काया गया। स्वामीजी महाराज कोई उत्तर न देकर समाचारपत्र पढ़ने लगे। निन्दा स्तुति का उन पर कोई प्रभाव कभी देखने में नहीं आया। मनु कीं यह बात पूर्णतया चरितार्थ होती है—"दूषितोऽपि चरेत् धर्म समः सर्वेषु भूतेषु" अर्थात् संन्यासी पर कोई कितना ही दोष लगाये या बुरा कहे किन्तु धर्म का ही आचरण करें सब में समान बर्ते। किसी की निन्दा श्रीमुख से कभी किसी ने नहीं सुनी। आपने अपने जीवन में सहस्रों व्यक्तियों के काम किए, अनेक प्रकार की सहायता दीं, विवाद निपटाए। यद्यपि आप आर्यसमाज के धार्मिक नेता थे किन्तु सभी प्रान्तों के बड़े बड़े राजनैतिक लोगों से भी सम्बन्ध बनाए रखते और उनसे समाज तथा व्यक्तियों के काम करवाते थे। महाशय कृष्ण जी और चौधरी छोटूराम जी परस्पर विरोधी होते हुए भी स्वामी जी महाराज के पास घण्टों बैठते थे। पंजाब के मुख्यमन्त्री लगातार अनेक बार आये कि आप हमारे हरयाणे से सुलह करवा दो। स्वामी जी महाराज के अन्य कई कार्य ऐसे थे जिनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। आश्चर्य की बात यह है कि अपने किसी कार्य का कभी किसी से जिकर नही करते थे अभिमान, काम, क्रोध, लोकेषणा, वित्तेषणा का त्याग तपस्या, ब्रह्मचर्य, निर्भयता, नियमपालन, इस प्रकार के अनेक गुण उनके जीवन में मूर्तिमान् बनकर रह रहे थे। धन्य है यह आर्य जाति जो ऐसे वीतराग पुरुषों को जन्म देती है। ●

तप, त्याग, विद्या, बल और सहिष्णुता का रूप

(श्री स्वामी ईशानन्द जी आर्यसमाज लोहारू)

[विशेष—रुग्णावस्था के समय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ला० नारायणदत्त जी ठेकेदार नई देहली की कोठी में ठहरे थे। वहां श्री स्वामी ईशानन्द जी उनकी सेवा में निरन्तर रहे। उस समय स्वामी जी महाराज से प्रार्थना करने पर कुछ घटनायें बताईं, उनको स्वामी ईशानन्द जी ने लिख लिया। अब स्वामी ईशानन्द जी लिखने में समर्थ नहीं थे, अतः श्री स्वामी वेदानन्द जी वेदवागीश गुरुकुल झज्झर उनके पास जाकर घटनाओं को लिख लाये।]

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तपस्या में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती से द्वितीय स्थान पर आते हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन को उन्होंने अपने जीवन उत्थान में प्रमुखता दी थी। जिस प्रकार महर्षि दयानन्द गंगोतरी के उद्‍गम से कलकत्ता तक पैदल विचरे, अयाचित भिक्षा से जीवन निर्वाह किया। सात वर्ष तक स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज भी गंगा तट पर विचरे। सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में जिन भी स्थलों का उल्लेख मिलता है, वे सारे ही स्थान स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने देखने की उत्सुकता में ११ वर्ष तक भ्रमण किया, इसमें उन्हें जो कठिनाई उठानी पड़ी तथा तपस्या करनी पड़ी वह उनके जीवन में उनकी उत्कर्षता का परिचायक है। ऋषि दयानन्द के समान ही बरफ में रहे, तथा एक लंगोटी में, पुस्तकें साथ नहीं रखते थे।

शारीरिक शक्ति का परिचय उनका लाहौर में देखने को मिला। रंगीला रसूल के प्रकाशक श्री राजपाल को जब एक मुसलमान ने छुरा मारा, तब वहां गली में स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी

स्वतन्त्रानन्द जी दोनों भी उपस्थित थे किन्तु इस अप्रत्याशित घटना के होने की किसी को भी सम्भावना न थी। रक्त रंजित छुरे को लेकर जब वह भाग रहा था स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ही थे, जो अपनी वीरता को प्रकट करने हेतु उस घातक पर लपके और कलाई इस जोर से पकड़ी कि छुरा वहीं उससे छूट कर धरती पर जा गिरा। उन्होंने घातक का हाथ छोड़ा ही नहीं। जहां यह उनको अन्याय को न सहने की ओर इंगित करता है, वहाँ उनकी निडरता का एक ज्वलन्त प्रमाण भी है।

अध्यात्मिक साधना श्री स्वामी जी महाराज की अतुलनीय थी। वैराग्य में साधना जोर पकड़ती ही है। इस साधना से उन्हें आन्तरिक ज्ञान हो जाता था। एक बार वे रुग्ण हुए। डाक्टरों ने स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से कश्मीर जाने का परामर्श दिया। मैं उनके साथ जाने वाला था किन्तु स्वामी जी ने वहां जाने का विचार छोड़ दिया और अपनी आन्तरिक अभिज्ञा से निर्णय लेकर जीवन की आशा छोड़ दी। एवं अपनी दैनन्दिनी में अपने भावी मृत्यु का उल्लेख कर लिया।

श्री महाशय कृष्ण जी ने उन्हें इस केनसर से ऋण पाने हेतु बम्बई जाने का परामर्श दिया, स्वामी जी महाराज को बचने की आशा तो न थी. किन्तु श्री महाशय जी को यह कहकर अपने शिष्टाचार का परिचय दिया कि महाशय जी! जब मैंने १६१० से आपकी बात का उल्लंघन नहीं किया, तब अब अन्तिम काल में आपका वचन कैसे टालूं, वे बम्बई चले गए।

सूक्ष्म शरीर स्वामी जी महाराज का अति बलवान् था। उसी के बल पर वे अपने कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ते थे। आपके पिता सरदार भगवान्सिंह जी सूबेदार मेजर पद से जब मुक्त हुए, तो बड़ौदा में उन्हें चीफ इन कमाण्डर बनाया गया। नासिक में कुम्भ था, स्वामी

जी का नाम केहरसिंह था, साधुवेश में प्राणपुरी बन चुके थे और साधुओं की मण्डली में रहने लगे थे। पिता जी ने कुम्भ में अपने पुत्र केहर-सिंह के आने की सम्भावना में अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को आदेश दिया था, कि इस फोटो वाला युवक यदि साधु मण्डली में मिल जावे तो उसे रोक लेना। एक व्यक्ति ने फोटो से केहरसिंह (प्राणपुरी) को पहचान लिया और सारी ही मण्डली को रोक लिया। इस मण्डली में कोई भी साधु पैसा नहीं छूता था। अतः उस व्यक्ति ने आश्वासन दिया कि टिकिट खरीद कर आप लोगों को दे दिया जायेगा। जब पिता सरदार भगवानसिंह जी आये, तो पुत्र को देखकर और अलग ले जाकर कहां मैं तुम्हें जमादार पद अधिष्ठित करना चाहता था। पर स्वामी जी ने उत्तर दिया आप मुझे सरदार बनाना चाहते हैं। मैं तो बहुत बड़ा सरदार बनूंगा। पिता की इच्छा ब्रह्म (बरमा) में भेज कर पुत्र की शादी करने की भी थी। पर उनकी उस आशा पर तुषारापात ही हुवा।

स्वामी जी (प्राणपुरी जी) देवी देवताओं को नहीं मानते थे। इस प्रकार की शिक्षा उन्हें किसी से मिली न थी। उनको स्वतः आत्मा से ही ऐसा बोध था। साधु मण्डली को जब देवी देवताओं पर इनकी अनास्था का पता चला, तो उन्होंने यह कहकर उपेक्षा कर दी कि प्राणपुरी को स्वतन्त्र ही रहने दो, इस प्रकार स्वतन्त्र कहते-कहते उनका नाम स्वतन्त्रानन्द पड़ गया, स्वतन्त्रानन्द किसी गुरु द्वारा विधिवत् दिया गया नाम नहीं है।

कारण शरीर के उत्कर्ष की साधना में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने प्रातः ३ बजे से ५ बजे के काल का उल्लंघन नहीं होने दिया। जाड़ा हो, गरमी हो, वर्षा हो रही हो, वे जहां भी उपासना में बैठते थे, वहां से इधर-उधर न होते थे।

ज़ि० लुधियाना के गांव मोही निवासी बचपन में अपने नानका लताला

ग्राम में उदासी साधु श्री विशनदास जी से पढ़े और विशनदास जी गद्दी के महन्त को पढ़ाते समय उन पर इस शिष्य की बुद्धि की अच्छी छाप पड़ी थी। प्रच्छन्न रूप से श्री विशनदास जी आर्यसमाजी थे और चाहते थे कि देश में आर्यसमाज का प्रचार हो। गीता को स्वामी (प्राणपुरी=केहर सिंह) ने १५ दिन में कण्ठस्थ कर लिया था। बुद्धि तीव्र एवं स्वच्छ थी। पूर्णानन्द जी से स्वतन्त्रानन्द जी प्राणपुरी के रूप में जब कभी भी उनके पास गए यही प्रेरणा मिली कि आर्य-समाज का काम करना है। प्राणपुरी उत्तर देते —मैं आर्यसमाजी नहीं बनूंगा। मेरा उनसे मेल नहीं खायेगा। तब विशनदास जी उदासी ने उन्हें सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ने को दिये और आज्ञा दी कि आर्यसमाज का काम करना है। प्राणपुरी जी ने कुथरावाँ गाँव में उन्हें पढ़ने के बाद अपने आत्मा के अनुकूल पाया। इस प्रकार आर्यसमाज में दीक्षित हुए थे। यह सब घटना १९०६ से १९०९ की हैं। इन ४ वर्षों में वहां आर्यसमाज की भावनाओं में खूब दीक्षित होकर आर्य समाज का कार्य करने का ही दृढ निश्चय कर लिया। कुथरावां ग्राम ही में एक हिन्दी पाठ-शाला चलाई। आर्य समाज की स्थापना की। यह स्थान सिक्खों के बाहुल्य से पूर्ण है। सिक्खों का ग्रन्थ साहब स्वामी जी को कण्ठस्थ था। उनसे कोई सिख भिड़ नहीं पाता था। सिक्ख उनके कृतज्ञ हैं कि वे हमें समय-समय भटकते मार्ग से बचाते थे।

स्वामी जी महाराज ने आर्यसमाज का पहला उत्सव मोगा में देखा था और स्वयं अपना पहला भाषण सिरसा में दिया था।

श्री डा० चिरंजीव भारद्वाज आर्यसमाजी अफ्रीका में अपने प्रैक्टिस के लिये गये हुए थे आर्यसमाज के कार्य को पर्याप्त प्रगति दी। जब वे वृद्ध हो गए तो उन्होंने श्री महाशय कृष्ण जी से निवेदन किया—"कोई आर्यसमाज को ऐसा साधु भेजिए जो मेरे कार्य को आगे बढ़ा सके।" उस समय महाशय जी की दृष्टि भारतीय आर्य-

समाज के साधुवों में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पर ही पड़ी। और परिणामस्वरूप स्वामी जी अफ्रीका चले गए। प्रचार किया किन्तु आंखों से अन्धे हो गए और भारत में लौट आए। चिकित्सा कराई, ठीक हो गए पर ऐनक लगानी पड़ी। फिर अपने गुरु श्री विशनदास जी उदासी से योग सीखा योग काल में सर्वथा अन्न छोड़ दिया था। ८० प्राणायाम प्रातःकाल करते। ८० दोपहर को और ८० ही सायं को। प्राणायाम के पश्चात् एक सेर दूध में १ छटांक घी ग्रहण करते थे। इस प्रकार तीन सेर दूध और ३ छटांक घी लिया करते थे। ऐसा करते करते स्वप्न में लाल रंग का वस्त्र दीखता। स्वामी जी महाराज को आश्चर्य हुआ कि योग साधना से तो शान्ति होनी चाहिए, उत्तेजना क्यों है वे गुरु विशनदास जी के पास गए और अपनी कथा सुनाई। गुरु जी ने सब कुछ सुनने के पश्चात् घृत में दोष पाया, जो किसी कामुक के घर से लेकर उपयोग किया जाता था। दूध तो स्वामी विशनदास जी की गोशाला का हो बरता जाता था और कार्यकर्त्ता भी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के प्रति आस्थावान् थे। अतः दूध सम्बन्ध में तो विचार की सम्भावना ही न थी। इसके पश्चात् घी में परिवर्तन किया गया और योग साधना आगे चली।

पिता श्री भगवान् सिंह जी अन्त में अपने पुत्र के लिए कहना ही पड़ा कि पुत्र केहरसिंह ने जो कहा था—"पिता जी! मैं एक बड़ा सरदार बनना चाहता हूँ, ठीक सिद्ध हुआ। स्वामी जी पंजाब में कहीं भाषण दे रहे थे। पिता जी भी उधर से ऊंट पर चढ़े जा रहे थे, रुक कर सुनने लगे। प्रतीत हुआ—हो न हो यह केहरसिंह ही हो। स्वामी की दृष्टि भी पिता जी पर पड़ी। उन्होंने एक व्यक्ति को संकेत किया—ऊंट एक तरफ बांध दो और ऊँट वाले व्यक्ति को रोके रक्खो। व्याख्यान समाप्ति पर पिता-पुत्र की भेंट हुई और पिता जी ने पुत्र से कहा—मुझे आज वह बात याद आ

रही है, जब तूने कहा था, मैं छोटा सरदार नहीं, बड़ा सरदार बनना चाहता हूं, ठीक निकली। मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है।

स्वामी जी प्रत्येक कुम्भ पर जहां कहीं भी वह भरता था। अवश्य पहुंचते थे। वहां उनके पुराने साधु भी मिलते थे, जिनकी मण्डली में वे प्राणपुरी के रूप में रहा करते थे। किन्तु विचार भेद के कारण जब स्वामी उस मण्डली से निकल गए थे, तो उनके लिए कुम्भ के मेलों में उनकी पंगत में बैठकर उनके साथ भोजन करना अशक्य था। कई प्रभावित पुराने साथी अपनी पंगत में बैठकर ही भोजन करने का आग्रह स्वामी जी से करते, किन्तु स्वामी जी इस आशय से कि सम्भव है कि कोई ऐसा व्यक्ति भी पंगत में हो जिस को साथ में मेरा भोजन करना खटक जाय और मुझे बीच में उठना पड़े, यह अशोभनीय होगा। अतः वे पहले ही सावधान होकर सब साधुओं की उपस्थिति में खड़े खड़े भोजन करते रहे। जब अनेक कुम्भ इस प्रकार के इसी तरह बीत गये। बब मण्लेश्वरों ने व्यवस्था दी कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पंगत में ही भोजन करें, और कोई भी साधु इन पर टीका टिप्पणी न करें। ●

क्रान्तदर्शी वीर संन्यासी

(ले०—स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, गुरुकुल झज्जर)

जितने महापुरुष होते हैं, वे सभी क्रान्तदर्शी होते हैं। उन्हें भविष्यत् में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास हो जाता है। इसी प्रकार के महापुरुषों में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज भी थे।

सन् १९४२ में जब अंग्रेजों के विरुद्ध "भारत छोड़ो" आन्दोलन हुआ, उस समय अंग्रेज सरकार ने पुलिस और सेना से जनता को अत्याचार, गोली, लूटमार, आगजनी आदि के द्वारा महान् कष्ट

दिये। लोगों को क्रान्ति की, बदले में सरकार ने अत्याचारों का पुरस्कार दिया। इस क्रान्ति से पूर्व ही स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने हरयाणावासियों को सावधान कर दिया था और इसके लिये वे ग्राम ग्राम में घूमकर भावी योजना को दे रहे थे। हरयाणा प्रान्त के सैनिक सिपाही उस समय सेना और पुलिस में बहुत अधिक थे। हरयाणा वाले सैनिक अपने ही भाइयों पर अत्याचार न करें इसके लिये इन्होंने सब ग्राम वालों को कहा कि अपने अपने घर से जितने सैनिक हैं उन्हें समझाया कि जनता पर कोई अत्याचार न करे। इसके लिये उन्होंने रोहतक, महेन्द्रगढ़ और गुड़गांवां जिलों का विशेकर भ्रमण किया। रोहतक जिले में उनके साथ प० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती थे तथा गुड़गांवां, रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ जिलों में मैं उनके साथ रहा। भापड़ौदा ग्राम में उन्होंने इसी निमित्त एक मीटिंग बुलवाई, उसमें हरयाणा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध गणमान्य व्यक्ति पधारे थे, मैं और सिद्धान्ती जी भी साथ थे। उस मीटिंग में निश्चय किया गया कि कोई सैनिक जनता पर गोली न चलाये। उस बैठक में एक गुप्तचर भी था, जिसने इसकी सूचना सरकार को दे दी। वह गुप्तचर आजकल कांग्रेस की ओर से एम० पी० है। गुप्तचर की सूचना से स्वामी जी महाराज को गिरफ्तार कर लिया गया और चुपचाप लाहौर के खूनी किले के तहखाने में डाल दिया गया। बहुत दिनों तक तो किसी को पता न चला कि स्वामी जी को कहां भेज दिया गया। उन दिनों पञ्जाब सरकार में चौ० छोटूराम जी शक्ति में थे, उनके यत्न करने से पता चला कि स्वामी जी को लाहौर भेजा गया है। वहां उनके साथ भयङ्कर अत्याचार किये गये, और अति कष्ट दिये गये, किन्तु वीर संन्यासी ने सब प्रसन्नता से सहन किये।

चौ० छोटूराम जी आदि के प्रयत्न से उनको जेल से निकाल तो दिया किन्तु एक वर्ष के लिये उनको दयानन्दमठ दीनानगर के अपने आश्रम में ही नजरबन्द कर दिया गया। उनके लिखने और बोलने

पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वे म्युनिसिपल एरिया से बाहर नहीं जा सकते थे। स्वामी जी का स्वभाव भ्रमण करने का था। थानेदार ने कई बार कहा भी कि आप दूर तक भ्रमण कर सकते हैं, किन्तु स्वामी जी ने कहा कि मैंने जिन शर्तों पर हस्ताक्षर किये हैं मैं उनका अक्षरशः पालन करूंगा, किसी की रूरियायत से नाजायज लाभ नहीं उठाऊंगा। इस प्रकार वे वहीं आश्रम के पास ही भ्रमण कर लिया करते थे।

इस गिरफ्तारी के मुकद्दमे में इनसे पूछा गया कि आपनें सैनिकों को गोली चलाने से निषेध किया क्या यह बगावत नहीं है? तो इन्होंने निर्भीकतापूर्वक स्वीकृति दी और कहा कि मैं संन्यासी हूं मैं सरकार के गलत काम का पूर्ण विरोध करूंगा यह बग़ावत (विद्रोह) नहीं है, राष्ट्र के प्रति मेरा कर्त्तव्य है। इसी समय श्री सिद्धान्ती जी के भी वारण्ट हो गये। वे गुरुकुल मटिण्डू में उत्सव पर गये। वहां गिरफ्तारी की सम्भावना थी, अतः उत्तरप्रदेश में चले गये।

इस प्रकार इस क्रान्ति की सूचना स्वामी जी महाराज नें बहुत पहले ही दे दी थी। भापड़ौदा मीटिंग से पूर्व मैं उनके पास खरहर ग्राम में पहुंच गया था। वहां स्वामी जी महाराज को चतुर्वेद-पद अनुक्रमणिका की आवश्यकता थी, वह पुस्तक अप्राप्य थी। मैं तत्काल गुरुकुल से ले जाकर उनको भेंट करने गया। उन्होंनें उसका मूल्य पूछा। मैंने कहा कि बस! आपका आशीर्वाद चाहिये। उन्होंने हंसते हुये यह दोहा कहा—

पकी पकाई रोटियां कुटे कुटाये घाट।
पले पलाये छोकरे और बने बनाये ठाठ॥

और बताया कि परोपकारी साधु को किसी चीज की कमी नहीं रहती। इसी प्रकार सभी वस्तुयें भेंट में मिलती रहती हैं।

इसी भांति पंजाब के हरयाणा भाग में १६५५ से पहले ही घूम घूमकर प्रचार किया कि तुम पर गुरुमुखी लिपि में लिखी जाने वाली पंजाबी भाषा जबरदस्ती लादी जायेगी, तुमको सावधान रहना चाहिये। इसके लिये उन्होंने "पंजाब की भाषा और लिपि" पर एक पुस्तक भी लिखी थी। उस समय किसी को इसका आभास भी नहीं था। किन्तु आप जानते हैं परिणाम यह हुआ कि पञ्जाब में हिन्दी आन्दोलन नें किस भयंकर रूप को धारण किया। सरकार से वीरतापूर्वक युद्ध लड़ा और हरयाणा पृथक् राज्य बनकर रहा।

इसी भांति १६४७ से पूर्व ही स्वामी जी ने हिन्दू मुस्लिम फिसाद की सूचना भी सारे हरयाणा प्रान्त में दे दी थी और अपनी सुरक्षा करने की चेतावनी भी दे दी थी, जिसने प्रबन्ध कर लिया वह बच गया जिसने नहीं किया वह मारा गया। इसके लिये रोहतक में हरयाणा के गणमान्य व्यक्तियों की एक बैठक बुलाई और कहा कि सशस्त्र क्रान्ति होगी, अपना बचाव कर लेना चाहिये नहीं तो पश्चात्ताप करोगे।

अंग्रेजी शिक्षा के दोषों को देखते हुये इन्होंने कहा था कि लोग यज्ञोपवीत और चोटी रखना छोड़ देंगे। इसी भय से इन्होंने एक यज्ञोपवीत यात्रा की, हजारों लोगों को यज्ञोपवीत दिये गये। मैं और सिद्धान्ती जी उस समय उनके साथ थे। जाट कालेज रोहतक में २५० छात्रों को यज्ञोपवीत दिये। मोखरा में ५५० यज्ञोपवीत दिये गये। समायल, भापड़ौदा और रोहणा आदि अनेक ग्रामों में भी भारी संख्या में यज्ञोपवीत संस्कार किये गये।

स्वामी जी के प्रयत्न से ही अनेक राज्यों में गोहत्या बन्दी का कानून बना। क्योंकि हैदराबाद सत्याग्रह के पश्चात् सरकार इनके प्रभाव और महत्त्व को जान चुकी थी। वह इनसे टक्कर नहीं लेना चाहती थी। जिस सफलता से हैदराबाद के आन्दोलन को इन्होंने चलाया उससे सभी लोग परिचित हैं।

इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज एक क्रान्तदर्शी महापुरुष थे उनको भावी संकटों का पूर्वाभास हो जाता था, जिससे वे लोगों को पहले ही सावधान कर दिया करते थे। ईश्वर करे ऐसे पुण्यात्मा लोग सदा हम पर कृपा करते रहे। ●

स्व० परमपूज्य गुरुवर

श्री स्वा० स्वतंत्रानन्द जी

(श्री स्वामी सोमानन्द जी दयानन्दमठ—दीनानगर)

(१) घटना भारत विभाजन से पूर्व की है। आर्यसमाज स्यालकोट (पंजाब) की स्वर्णजयन्ती मनाई जा रही थी। वक्ताओं का नाम बोलने का विषय तथा समय श्यामपट पर लिखा हुआ था। पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज से पूर्व एक प्रसिद्ध भजनोपदेशक बोल रहा था। वह बोलते बोलते पच्चीस मिनट अधिक ले गया। पूज्यवर श्री स्वामी जामहाराज ने पौन घंटा उपदेश करना था किन्तु समय शेष रह गया था बीस मिनट। अतः पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज ने बीस मिनिट ही उपदेश देकर कहा कि जो समय मुझे बताया था तदनुसार भाषण समाप्त कर रहा हूं। यह सुनकर प्रधान तथा मंत्री ने प्रार्थना की कि महाराज आप पच्चीस मिनट और बोलिये। परन्तु पूज्यवर श्री आचार्य जी यह कहकर बैठ गये कि नियम पालन करने के लिये बनाये जाते हैं तोड़ने को नहीं।

(२) दूसरी घटना है इन्दौर नगर की। पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज ने आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा की प्रार्थना पर एक मास का समय प्रदान किया था। सेवक भी साथ था। इन्दौर पहुंचने पर एक प्रतिष्ठित आर्य पुरुष ने पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज से भोजन करने की प्रार्थना की, पूज्यवर श्री

जी महाराज नें स्वीकार कर ली। मैंने उस आर्यपुरुष को बता दिया कि भोजन १२ बजे करवा देना पश्चात् नहीं करते यह अवश्य ध्यान रखना। वह विश्वास दिलाकर चला गया। परन्तु वह साढ़े बारह बजे कार लेकर आया मैंने कहा अब तो नहीं करेंगे। इस पर वह स्वयं जाकर कहने लगा महाराज थोड़ी सी देर हुई है। भोजन न करना तो अच्छा नहीं है। इस पर पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज ने हँस कर कहा कि कोई भोजन को कहकर मुकर जाय तो क्या अच्छी बात है। यह सुनकर वह सज्जन भूल अनुभव करके मौन हो गया और अभिवादन करके चला गया। पश्चात् आर्यजन समय का पालन दृढ़ता से करनें लगे।

(३) तीसरी घटना भारत विभाजन के पश्चात् रोहतक नगर की है। उन दिनों नगर में एक योगी आये हुए थे। उनको समाधि लगाने की चर्चा चल रही थी। योजनानुसार उसनें नगर के दुर्गा मन्दिर के अन्दर एक स्थान में चारों ओर और ऊपर भी शीशे लगा मिट्टी से बन्द करके समाधि के लिये एक चौखटा बनवा कर उसमें समाधि लगाई। नगर के सहस्त्रों नरनारी दर्शन करनें जानें लगे। मेरा भी विचार जानें का था। उसी समय दयानन्दमठ में पूज्यवर श्री स्वामी जी महाराज पधारे। एक आर्य सज्जन ने कहा महाराज आप भी समाधि देखनें चलिये। पूज्यवर श्री आचार्य जी ने कहा मेरा जाना ठीक नहीं, पाखंड को प्रोत्साहन मिलेगा। लोग प्रमाण देंगे कि आर्यसमाज के संन्यासी भी दर्शन करने जाते हैं। इस प्रकार अन्ध परम्परा चलनें लगती है। दूसरे दिन ही योगी की पोल खुल गई जब दम घुटनें पर उसनें संकेत करके चौखटे के एक कोनें में सुराख करवाया। बात यह थी कि उस तथाकथित योगी नें एक सज्जन को प्रलोभन दिया था कि लाउड स्पीकर से प्रचार करनें, शामियाने लगाने आदि का व्यय वहन करके मेरी समाधि का प्रबन्ध कर दो और जो चढ़ावे आदि से आय हो वह सब आपकी

होगी परन्तु पाखंड की पोल खुलने से उस सज्जन को घाटे का सौदा रहा।

तीसरे दिन वही आर्यसज्जन मठ में आये और मुझे कहने लगे कि पूज्य स्वामी महाराज बड़े दूरदर्शी हैं। ऐसे अवसरों पर आर्यों का दर्शक बनकर जाना पाखंड को ही प्रोत्साहन देना है। ●

विरक्त तथा लौकिक संन्यासी

(श्री पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री, कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

सन् १९३० में जब आर्य महाविद्यालय किरठल (मेरठ) से पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा देने लाहौर गया तो सर्वप्रथम वहीं स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के दर्शन हुए। उन दिनों वे दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य थे और श्री सिद्धान्ती जी ने वहीं हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया था। तभी से मुझे स्वामी जी का स्नेह प्राप्त हो गया और फिर उनके जीवन पर्यन्त मैं उनके निकटतम व्यक्तियों में से रहा।

वह नियम संयम तथा तप के धनी थे। रहन सहन तथा आहार-विहार में पद पद प्रर उनके जीवन में विशिष्ट गुण झलकते रहते थे। एक बार ग्राम बावली जिला मेरठ में वे आर्यसमाज के उत्सव पर आये। कोई निश्चित समय उन्होंने पहुंचने का नहीं दे रखा था। कड़ाके की सर्दी में रात को उस गांव के स्टेशन पर उतरे और वहीं अपनी लोई ओढ़ कर रात भर बैठे रहे। सवेरे हमने देखा कि स्वामी जी सभा पंडाल में बैठे हैं। तभी यह सब जानकारी मिली।

सन् ४१ की जनगणना में सिक्खों ने एक योजनाबद्ध अभियान चलाया कि उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में भी ग्रामीण लोगों को

अधिक से अधिक संख्या में सिख लिखाया जाय। बक्सर शुगर मिल जाट सिक्खों का था, उनके सहयोग से हापुड़ को भी केन्द्र बनाया गया और ज्ञानी बादलसिंह उसके इंचार्ज थे। सिक्खों की वीरता तथा साहस की बातें कहकर केवल कड़े बांटे जाते थे और इसी से उन्हें सिक्ख मत में दीक्षित मानकर जनसंख्या की वृद्धि का लाभ उठाने का प्रयास किया जा रहा था। बड़ी संख्या में युवक कड़े पहनकर घूमते थे। सार्वदेशिक सभा ने इस आन्दोलन के मुकाबले के लिये श्री स्वामी जी को इंचार्ज बनाया था। सिख प्रचारकों ने आतंक का वातावरण पैदा कर दिया था। स्वामी जी ने बड़े साहस और परिश्रम से सिक्खों के इस षड्यन्त्र को विफल किया। इसी सिख किले में स्वामी जी ने गढ़मुक्तेश्वर मेले पर प्रचार का कैम्प लगाया। सिक्खों का कैम्प भी पास ही था। सिख प्रचारकों के साथ उनके अनुयायी भी बड़ी संख्या में हमारे कैम्प में आते थे और बड़ा दिलचस्प शास्त्रार्थ भी हुआ। परन्तु स्वामी जी ने अपने तर्क तीरों से उन्हें इस प्रकार धराशायी कर दिया कि फिर वे सम्भल ही नहीं पाये। उसी अवसर की एक घटना अभी तक मेरे स्मृति पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है। स्वामी जी लगभग १२ बजे मध्याह्न कैम्प में पधारे और टंट में बैठे थे। समाज के मन्त्री ने पूछा कि स्वामी जी भोजन कैसा पसन्द करेंगे। स्वामी जी ने कहा कि कैसे का क्या अर्थ ? मन्त्री ने कहा—महाराज ! यहां बाजार में तो तेल की पूरियां मिलती हैं और शाक-सब्जी में भी मिर्चों की भरमार होती है। इस पर स्वामी जी ने कहा कोई बात नहीं जो बाजार में मिलता है, वही खा लेंगे और उसी समय वहीं बाजार का भोजन उन्होंने किया। एक बार स्वामीजी को भारत अधिनियम के अन्तर्गत लाहौर किले में जेल में डाला गया, वहां उन्हें बहुत यातनायें दी गईं और फिर जेल से निकालकर दयानन्दमठ दीनानगर में ही

नज़रबन्द कर दिया गया। श्री सिद्धान्ती जी भी इस केस में स्वामी जी के साथ दूसरे अभियुक्त थे। इसलिये श्री सिद्धान्ती जी ने मुझे स्वामी जी महाराज के साथ कुछ आवश्यक बातें करने के लिये दीनानगर भेजा। मैं वहां दो दिन स्वामी जी के पास रहा। मठ में दोपहर को भिक्षा का भोजन आता है, स्वामी जी बीच में बैठकर सबको परोसते जाते थे और एक हाथ से स्वयं भी साथ खाते थे। वह केवल एक समय दोपहर को ही भोजन करते थे। सायंकाल एक तख्त पर बैठे रहते, चारों ओर शिष्य मण्डली बैठी बात करती रहती और उसी तख्त पर बिना किसी बिछौने के स्वामी जी तकिया की जगह ईंट पर सिर रखकर सो जाते। स्वामी जी पर नजरबन्दी आदेश के अन्तर्गत दीनानगर की म्युनिसिपल सीमाओं से बाहर न जाने का प्रतिबन्ध था, परन्तु पुलिस आदि की कोई देख-रेख बिल्कुल नही थी। राजवाहे की एक पटरी पर मठ, दूसरी पटरी सीमा से बाहर है। पुलिया मठ के साथ है, परन्तु एक वर्ष तक उस प्रतिबन्ध की अवधि में स्वामी जी राजवाहे की दूसरी पटरी पर नही गये। कानून के स्वैच्छिक सम्मान का यह एक आदर्श है।

स्वामी जी अपने सम्पर्क के सभी व्यक्तियों के इतने आत्मीय बन जाते थे कि मानो वह उनके परिवार के ही प्रमुख हैं। सामान्यतया वे रूखे प्रतीत होते थे परन्तु उन जैसी आत्मीयता का भाव मुझे किसी अन्य संन्यासी या धार्मिक नेता में नही मिला। मैं जब दयानन्दमठ से चलने लगा तो देखा कि स्वामी जी ने मेरे लिये रास्ते का भोजन (पाथेय) तैयार करा रखवा दिया है। मुझे बड़ा संकोच हुआ, परन्तु कह ही क्या सकता था। रास्ते में समय होने पर भोजन देखा तो इतना उत्तम था कि जैसे घर का ही बना हो।

सन् ४७ से मैं और श्री सिद्धान्ती जी देहली आकर रहने लगे। स्वामी जी जब देहली आते तो प्रेस में अवश्य आते। फिर हमें ज्ञात

हुआ कि जब कभी स्वामी जी देहली आते हैं तो लगभग अपने सभी स्नेही व्यक्तियों से उनके घरों पर जाकर मिलने का प्रयास करते हैं। स्वामी जी में लौकिक व्यवहार की भी बड़ी दूरदर्शिता थी। गृहस्थ, परिवार तथा जीवन सम्बन्धी अनेक समस्याओं के सम्बन्ध में वे ऐसी उपयोगी सलाह देते थे कि सभी व्यक्ति उन्हें इन मामलों में भी अपना मार्गदर्शक मानते थे। मैंने शिक्षा क्षेत्र में काम करते हुए भी उन्हीं की प्रेरणा पर राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया था।

स्वामी जी जब देहली में आते थे तो लाला नारायणदत्त की कोठी १३ नम्बर बारहखम्भा रोड़ पर ठहरते थे। मैं उनसे मिलने प्रायः जाता था, बहुत बार उसी समय उनके पास बैठकर 'सम्राट्' साप्ताहिक के लिये लेख भी लिख लेता था। कई बार वे मुझे छोड़ने के लिये कुछ दूर तक साथ आते थे। आरम्भ में मैं दिल्ली नवागन्तुक होने के कारण दिल्ली के मार्गों से अधिक परिचित नहीं था। पहाड़ी धीरज से बारहखम्भा के लिये एक ही परिचित रास्ते को जाता था। एक दिन स्वामी जी कनाट प्लेस तक मेरे साथ आये। मुझे कहने लगे कि अब कौन से रास्ते से जाना है। मैंने कहा स्वामी जी! यह रास्ता है जिससे मैं आता जाता हूँ। स्वामी जी ने कहा, नहीं एक ही रास्ते से नहीं जाना चाहिये, सब रास्ते मालूम होने चाहिये। चलो मैं तुम्हें दूसरा रास्ता बताता हूँ और कुछ दूर तक चलकर मुझे दूसरा रास्ता बताया। उनकी व्यावहारिकता पर मै मुग्ध हो गया।

स्वामी जी धार्मिक प्रचार के मामले में भी बड़े ही व्यवहारिक थे। जब भी मिलते तो पहला सवाल यही करते—कितनी शुद्धियां की हैं ? कितनी मुस्लिम लड़कियों को आत्मसात् किया है ? मानो प्रत्येक आर्यसामाजिक कार्यकर्त्ता के कार्य की उनके पास यही सब

से बड़ी कसौटी रही हो। हरयाणा तथा पंजाब में अन्य आर्यसमाजी प्रचारक तो लोगों का हुक्का छुड़ाने का आग्रह करते, परन्तु स्वामी जी सलाह देते थे, हुक्का पीने की। उनका कहना था कि स्वयं हुक्का पीओ और अपने साथी सिक्खों को पिलाओ जिससे उनमें कट्टरता कम हो। इस तरह का व्यावहारिक दृष्टिकोण मैंने अन्य किसी नेता में नही पाया।

लाहौर में स्वामी जी का न केवल आर्यसामाजिक नेताकारी रूप था, अपितु राजनैतिक गतिविधियों के भी वे केन्द्र बनें हुए थे। स्वामी जी के पास ही मैंने सबसे पहली चौधरी छोटूराम जी के दर्शन किये थे। चौधरी साहिब स्वामी जी से मिलने आये थे और वहीं श्री सिद्धान्ती जी ने मुझे उनसे मिलाया। छात्रावस्था में ही स्वामी जी से दूसरे जिस महान् व्यक्तित्व ने मुझे प्रभावित किया, वह चौधरी छोटूराम ही थे। उन दिनों पंजाब भर में कालिज केवल लाहौर में ही थे। हरयाणा के भी सभी छात्र लाहौर ही पढ़ने पहुंचते थे। स्वामी जी इन सबके स्वाभाविक संरक्षक और प्रेरणा स्रोत थे। उन दिनों चौधरी छोटूराम जी का पंजाब के शहरी नेताओं के साथ बड़ा संघर्ष चलता था। ये लोग समय समय पर स्वामी जी के माध्यम से चौधरी छोटूराम के साथ बातचीत करते रहते थे।

इस प्रकार स्वामी जी महाराज जहां आर्यसमाज के विख्यात नेता थे वहाँ पंजाब की राजनीति भी उनकी तरफ देखती थी। ऐसा सर्वतोमुखी उनका व्यक्तित्व तथा नेतृत्व था। वे संन्यासी के साथ-साथ राजनैतिक भी थे और विरक्त तपस्वी होने के साथ-साथ लौकिक व्यवहार में भी सिद्धहस्त थे।●

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

"जैसा मैं उन्हे जानता हूँ !"

(श्री० आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति भू० पू० उप कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आर्यसमाज के मूर्धन्य संन्यासी थे। वे सादगी, तपस्या, संयम और ब्रह्मचर्य के मूर्त रूप थे। संन्यासी होने के कारण उनमें पुत्रैषणा तो थी ही नहीं, वित्तैषणा और लोकैष्ण भी उनको छू नहीं गई थी। वे पूर्ण वीतराग थे। किसी से किसी प्रकार की लाग-लपेट वे नहीं रखते थे। संयम और वीतरागता आदि संन्यासी के आर्दश गुण तो उनमें पराकाष्ठा के थे ही, उनका स्वाध्याय भी बड़ा विस्तृत था। इतिहास के वे बड़े भारी ज्ञाता थे। सिक्खों के इतिहास के तो वे अद्वितीय विद्वान् थे। जब गुरुकुल कांगड़ी गंगा के उस पार चण्डी पर्वत की तलहटो में स्थित था तब कितनी ही बार स्वामो जी महाराज को सिक्ख धर्म व सिक्ख इतिहास एवम् राजनीति पर व्याख्यान देने के लिए गुरुकुल में बुलाया गया था और इन विषयों पर उनके व्याख्यान बड़े पसंद किए गए थे। संस्कृत साहित्य के इतिहास, पुराण और दर्शन आदि विषयों के भी वे बड़े मार्मिक ज्ञाता थे। ऋषिदयानन्द और आर्यसमाज के सिद्धान्तों का उनका ज्ञान भी अद्वितीय और बड़ा सुलझा हुआ था। वेदों का उनका स्वाध्याय भी बड़ा गहरा और व्यापक था। ऋग्वेद की मन्त्र संख्या पर उन्होंने जो पुस्तक लिखी थी वह उनके गहरे वैदिक स्वाध्याय का परिचय देती है।

मैं जब गंगा के उस पार गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ता था तभी से स्वामी जी महाराज को जानता हूँ। उसी समय से स्वामी जी महाराज का स्नेह मुझ पर बना रहा और उनका आशीर्वाद मुझे

प्राप्त होता रहा। वे जब भी गुरुकुल के वार्षिक उत्सवों पर अथवा बीच में भी कभी गुरुकुल पधारते थे तो मुझे बुला कर अवश्य हाल चाल पूछा करते थे। मैं पढ़नेलिखने में अच्छे छात्रों में था, मेरा स्वास्थ्य भी बहुत उत्तम था और गुरुकुल के उत्सवों के अवसर पर होने वाले सम्मेलनों आदि में बोला भी करता था, इस कारण स्वामी जी महाराज मुझसे स्नेह करते थे। जब भी वे मुझसे मिलते थे तो मुझे समाज के क्षेत्र में कार्य करगे की प्रेरण किया करने थे। उनकी और अन्य पूज्य गुरुजनों की प्रेरणा से ही मैंने आर्यसमाज के क्षेत्र में काम करने का निश्चय किया था। जब मैं सन् १९२८ में गुरुकुल से वेद वाचस्पति की उपाधि प्राप्त करके आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब में काम करने के लिये लाहौर गया तब से तो स्वामी जी महाराज से मिलते रहने के बहुत अवसर प्राप्त होते थे। उन दिनों स्वामी जी महाराज लाहौर में दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के आचार्य थे। और प्रतिनिधि सभा में वेदप्रचार विभाग के अधिष्ठाता भी थे। आरम्भ में मैंने वेद प्रचार विभाग में ही कार्य करना शुरु किया था। अधिष्ठाता के रूप में स्वामी जी द्वारा दिए गए प्रोग्रामों पर मुझे आर्य समाजों के उत्सवों पर व्याख्यान देने के लिये जाना होता था। उन दिनों की एक बात स्वामी जी महाराज की मुझे अभी तक याद है। यदि कभी कोई उपदेशक या भजनीक अपने प्रोग्राम से किसी कारण पहले स्वीकृति लिये बिना लाहौर आ जाता था। तो स्वामी जी उसी समय उसे उसी स्थान पर वापिस भेज देते थे जहाँ से वह आया होता, चाहे वह स्थान लाहौर से कितना हो दूर क्यों न होता। कभी-कभी तो ऐसे व्यक्तियों को मरदान, कोहाट और पेशावर जैसे दूर स्थानों पर भी वापिस जाना पड़ता। जब स्वामी जी की लिखित स्वीकृति उन्हें वहाँ मिल जाती तभी वे वापिस लाहौर या अपने निवास स्थानों पर आ पाते थे।

उन दिनों उपदेशक महाविद्यालय में स्वामी वेदानन्द जी महाराज वेद पढ़ाया करते थे। स्वामी वेदानन्द जी किसी कारण उपदेशक महाविद्यालय छोड़ कर चले गये थे। तब स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने प्रतिनिधि सभा के मन्त्री महाशय कृष्ण जी और प्रधान दीवान बदरीदास जी से कह कर मुझे स्वामी वेदानन्द जी के स्थान पर उपदेशक विद्यालय में वेद का उपाध्याय नियुक्त कराया था। वेद के साथ साथ मुझे उपदेशक विद्यालय में अष्टाध्यायी पढ़ाने का कार्य भी दिया गया था। तब तो मुझे स्वामी जी महाराज को बहुत ही समीप से देखने का अवसर मिला था। स्वामी जी महाराज की दिनचर्या, स्वभाव, कार्य क्षमता और स्वाध्याय शीलता आदि को इतने समीप से देखकर स्वामी जी के प्रति मेरी श्रद्धा और आदर बुद्धि बहुत बढ़ गई थी। सचमुच वे आर्यसमाज में अपनी किस्म के एक ही संन्यासी थे।

उपदेशक विद्यालय में स्वामी जी के साथ रहते हुए मैंने स्वामी जी से एक बार पूछा था कि स्वामी जी क्या आपने कभी योग का अभ्यास भी किया है ? स्वामी जी ने कहा कि योग का कोई और विशेष अभ्यास तो नहीं किया है। कुछ समय अपने भ्रमण काल में प्राणायाम का विशेष अभ्यास मैंने अवश्य किया था। मैंने उनसे पूछा कि प्राणायाम के अभ्यास से क्या आपको कोई किसी तरह की सिद्धि या विशेष उपलब्धि भी प्राप्त हुई थी ? स्वामी जी ने बताया था कि उन दिनों मुझे अपने शरीर में से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आने लगी थी, मैं जहाँ भी बैठता था मुझे वह सुगन्ध घेर लेती थी।

स्वामी जी महाराज के व्याख्यान भी बड़े सुलझे हुए और रोचक हुआ करते थे। मैंने स्वामी जी के सैकड़ों व्याख्यान सुने होंगे। आर्य-समाजों के उत्सवों पर मैं और स्वामी जी प्रायः इकट्ठे हो जाया करते थे। स्वामी जी के व्याख्यानों का जनता पर बड़ा प्रभाग पड़ता

था। उनके व्याख्यानों में उनके अपने अनुभव पर आधारित और इतिहास के अध्ययन से संगृहीत शिक्षाप्रद और रोचक कहानियों का बड़ा पुट रहता था। न जाने कितनी कहानियाँ वे अपने व्याख्यानों में सुना देते थे। उनके पास कहानियों का अटूट भण्डार था। वैसे स्वामी जी से अनेक बार प्रार्थना की थी कि आप इन कहानियों को अपने व्याख्यानों में पिरोकर लिख डालिए, आर्य समाज के साहित्य में यह बहुत निराली वस्तु हो जाएगी और आगे आने वाले लोगों के लिए बड़े काम की चीज होगी। स्वामी जी ऐसा करने की बात कह तो देते थे पर वह ऐसा कर नहीं सके। मैंने तो स्वामी जी से यहाँ तक भी कह दिया था कि आप प्रतिनिधि सभा से मुझे मांग लीजिए, मैं आप के साथ रहूंगा और आपकी इन कहानियों को लिखता रहूंगा। मुझे उनकी ये कहानियाँ और इनसे ओत प्रोत उनके व्याख्यान बड़े पसंद आते थे।

व्याख्यानों के संबन्ध में स्वामी जी महाराज का एक स्थिर नियम यह था कि वे व्याख्यान के लिए नियत समय से अधिक एक मिनट भी नहीं लेते थे। कई बार ऐसा भी हो जीता था कि स्वामीजी से पहले बोलने वाले वक्ता अपने निर्धारित समय से बहुत अधिक समय ले लेते थे और स्वामो जी का अपना समय बहुत कम रह जाता था। स्वामी जी उसी बचे हुए थोड़ समय में ही अपना व्याख्यान समाप्त कर देते थे। कभी कभी तो स्वामी जी के अपने नियत समय में ५—१० मिनट ही शेष रह जाते थे। स्वामी जी उन्हीं ५—१० मिनटों में अपना वक्तव्य समाप्त कर देते थे। उत्सव के प्रबन्धक व जनता कितना ही कहते रहें स्वामी जी नियत समय से आगे बोलने के लिए कभी भी उद्यत नहीं होते थे।

भोजन के सम्बन्ध में भी स्वामी जी महाराज का ऐसा ही अटल नियम था। वे दिन में १२ बजे के बाद कभी भोजन नहीं करते थे। शाम को तो वे भोजन करते ही नहीं थे। दिन में एक बार हीं

भोजन करते थे। यदि कभी ऐसा हो जाता था कि उन्हें दिन में १२ बजे से पूर्व भोजन नहीं मिल सका तो वे फिर उस दिन भोजन ही नहीं करते थे चाहे कितना भी आग्रह किया जाए। फिर वे उस दिन भोजन न करके अगले दिन ही भोजन करते थे।

स्वामी जी का डील डौल बहुत बड़ा था। उनका स्वास्थ्य भी आश्चर्य जनक रीति से उत्तम था। इसलिए उनकी भूख और भोजन की मात्रा भी पर्याप्त अधिक थी। फिर वे खाते भी दिन में एक बार ही थे। इसलिए वे भोजन पर्याप्त मात्रा में करते थे जब मेरा नया नया विवाह हुआ तो मैंने स्वामी जी को एक दिन अपने घर भोजन करने के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। स्वामी जी नियत समय पर भोजन करने आये। मेरी पत्नी ने स्वामी जी के प्रति हमारी श्रद्धा के अनुरूप अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ बनाये। पत्नी ने बड़े पतले पतले फुलके स्वामी जी के लिए बनाने प्रारम्भ किए। पत्नी फुलके बनाती जाती थी और मैं उससे लेकर फुलके स्वामी जी को परोसता जाता था। स्वामी की भूख भला उन फुलकों से आसानी से कहां भरती? पत्नी फुलके बनाती जाती थी और स्वामी जी उन्हें एक ही ग्रास में खाते जाते थे। न जाने स्वामी जी ने कितने फुलके खा लिए होंगे। इस स्थिति को देखकर पत्नी रसोई घर में बैठी हँसने लगी। मैं भी उसके साथ ही हँस पड़ा। स्वामी जी ने मेरी पत्नी की हँसी सुन ली। स्वामी ने मेरी पत्नी का नाम लेकर हँसते हुए कहा, इन फुलकों से तेरा छुटकारा नहीं होगा, यदि अपना छुटकारा चाहती है तो मोटी मोटी रोटी बना कर भेज, इन कागज के टुकड़ों से मेरा पेट नहीं भरेगा। यह घटना जब कभी याद आ जाती है तो हम दोनों को अब भी हँसी आ जाया करती है।

स्वामी जी महाराज कई बार बातचीत में और व्याख्यानों में

भी प्रसंग-वश सेना के परिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर दिया करते थे। मैंने एक बार स्वामी जी से पूछा कि स्वामी जी ! आपको ये सेना के पारिभाषिक शब्द कैसे आते हैं ? स्वामी जी ने बताया था कि वे वैरागी होने से पहले सेना में कार्य कर चुके थे। उन्होंने यह भी बताया था कि वे अंग्रेजों व चीन के युद्ध में लड़ने के लिए चीन भी गये थे।

स्वामी जी के परिचित मेरे एक मित्र ने बताया था कि वैरागी होने से पहले जब स्वामी जी अपने गांव में रहा करते थे तो गांव में एक चाल-चलन की बुरी स्त्री रहती थी। वह दुष्टा स्त्री गांव के युवकों के चरित्र को भ्रष्ट किया करती थी। लोगों ने उसे बहुत समझाया। पर वह अपना रवैया नहीं छोड़ती थी। जब हालत बहुत बिगड़ गई और वह दुष्टा ठीक ही न हुई तो स्वामी जी ने एक दिन अवसर पाकर उस स्त्री को उसका गला घोटकर इस संसार से विदा कर दिया और गांव के युवकों को उसके बुरे प्रभाव से बचा लिया। इस घटना से पता चलता है कि स्वामी जी के संन्यस्त जीवन में जो अलौकिक संयम, ब्रह्मचर्य और चरित्र की पवित्रता दिखाई देती थी। उसका बीज उनके वैराग्य से पूर्व के जीवन में भी विद्यमान था।

स्वामी जी महाराज जो भी कार्य करते थे उसे पूर्ण निरासक्त भाव से किया करते थे। दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के आचार्य का कार्य भी वे निरासक्त भाव से करते थे। १०-१५ वर्षों तक दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय का आचार्य रहने पर भी उनके मन में इस पद के लिए कोई मोह या आसक्ति नहीं थी। उन्होंने प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों से कह दिया था कि तुम लोग किसी अन्य व्यक्ति का प्रबन्ध कर लो, मैं किसी दिन भी उपदेशक विद्यालय छोड़ कर चला जाऊंगा। सभा के अधिकारी उनसे विद्यालय के

आचार्य पद को सम्भाले रहने का आग्रह करते रहते थे। १९३५ में स्वामी जी महाराज विना किसी को बताए कमण्डलु उठा कर विद्यालय से चले गये। बहुत समय तक तो यही नहीं पता चला कि स्वामी जी कहां गये हैं। उनके इस प्रकार विद्यालय के आचार्य का पद त्याग देने पर सभा ने मुझे उपदेशक विद्यालय का आचार्य नियुक्त किया था।

मैं ऐसे महान् संन्यासी की स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूं। ●

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज

(श्री पं० ज्ञानचन्द बी. ए. आर्य सेवक, देहली)

वर्षों स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के चरणों में रहने का अवसर प्राप्त हुआ और उन के नेतृत्व में आर्यसमाज के सेवा कार्यों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लाहौर में जब वे गुरुदत्त भवन में दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य रहे, तब प्रतिदिन उनके दर्शन और सदुपदेश प्राप्त होते थे। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की युद्ध समिति के वे प्रधान थे और मैं उन के साथ उस समिति के मंत्री के तौर पर काम करता रहा। तब लगातार छः मास तक चौबीसों घंटे उन का सामीप्य प्राप्त रहा। इस प्रकार उन से प्रेरणा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे प्रेरणाएं आज भी ताजा हैं और उनका संस्मरण मार्ग दर्शन कर रहा है:—

१—एक बार मैं उन के साथ आर्यसमाज गोजरा (जिला लायलपुर) के वार्षिक उत्सव पर गया। जब हम समाज मन्दिर में पहुंचे, तो एक बरामदे में पड़े हुए एक तख्तपोश पर स्वामी जी ने अपना कम्बल और कमण्डलु रख दिया। हम तीन दिन वहां रहे।

स्वामी जी का डेरा उसी तख्तपोश पर रहा। उन तीन दिनों में आप ने अन्न ग्रहण नहीं किया। परन्तु उपदेश और व्याख्यान बराबर कार्यक्रमानुसार देते रहे पूछने पर भी उन्होंने किसी को नहीं बताया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। न ही उन के मुखमण्डल पर विकार ही आया। कदाचित वे यह परीक्षण कर रहे थे कि भोजन के विना भी मनुष्य कई दिनों तक सामान्य तौर पर काम करता रह सकता है। ऐसा अनुभव भी तभी किया गया, जब एक बार उन्होंने बातों बातों में कहा कि शरीर मन के आधीन है न कि मन शरीर के आधीन है।

(२) एक बार उन के साथ आर्यसमाज जम्मू के वार्षिकोत्सव पर जाना हुआ। उन्होंने चलने से एक दिन पूर्व ही कह दिया था कि मैं घर से अपने लिये और उनके लिये भोजन तैयार कराकर साथ ले आऊं, क्योंकि गाड़ी लाहौर ९ बजे प्रातः चलती थी और ३ बजे बाद दोपहर जम्मू पहुँचती थी। सो मैं ने स्वामी जी महाराज की आज्ञा का पालन किया। जब हम गाड़ी में बैठे थे, तो मैं देखा कि उनका मुख मण्डल कुछ तमतमा रहा था। मैं ने उनका हाथ छू कर देखा तो मालूम हुआ कि महाराज आप को यात्रा नहीं करनी चाहिये थी। तब उन्होंने बताया कि ज्वर तो दो दिन से आ रहा था। उस के लिये वेदप्रचार तो बन्द नहीं किया जा सकता। मैं ने कहा महाराज यदि कल ज्वर था तो मुझे भोजन बनवा कर लाने के लिये क्यों कहा था। उन्होंने पूछा कि इस में हानि क्या हुई है। मैंने कहा और तो कुछ नहीं भोजन व्यर्थ जायेगा। कहने लगे ऐसी चिन्ता मत करो भोजन का खाना कोष्ट अलग है और बुखार का खाना (कोष्ट) अलग है। जम्मू पहुंच कर मैंने कहा कि आराम करें। तो आप ने कहा कि व्याख्यान तो तीनों दिन दूंगा। बाकी आराम ही आराम तो है।

(३) सन् १९४० में आर्य प्रतिनिधि सभा में दो दल बन गये।

एक दल के नेता आचार्य रामदेव जी थे और दूसरे के महाशयकृष्ण जी। उस समय यह समझा जाता था कि म० कृष्ण जी विशेष रूप से स्वामी जी महाराज के स्नेह के पात्र थे। स्वामी जी महाराज की सेवा में दोनों दलों के लोग मिलते जुलते रहते थे। वे सब से हँस करके बोलते रहते थे। परन्तु इतने पक्षपात रहित थे कि न किसी दल का समर्थन करते थे और न विरोध ही करते थे।

(४) जब हैदराबाद आर्य सत्याग्रह का केन्द्र शोलापुर में था, तो नित्य चारों तरफ से सत्याग्रहियों पर अत्याचारों के समाचार आते रहते थे। कई स्थानों पर तलवारों और बरछियों से सत्याग्रहियों को घायल किया गया। कई सत्याग्रहियों की हत्याएं भी हुईं। निजाम के एजेण्ट सत्याग्रहियों का रूप धारण करके हमारे जत्थों में सम्मिलित हो जाते थे। वे जेल पहुँचते ही माफी मांग कर छूट जाते थे और सच्चे सत्याग्रहियों को डिगाने का यत्न करते थे। इसी बीच में शोलापुर में हिन्दू मुस्लिम दंगा हो गया। तब बम्बई सरकार ने हमें शोलापुर से अपना केन्द्र उठाने को कहा और ऐसा करने के लिये केवल २४ घण्टे का समय दिया, जिसके अन्दर सारे दफ्तर, १५० कार्यकर्त्ताओं और १५०० सत्याग्रही स्वयंसेवकों को वहाँ से हटाना था। इन सब प्रकार की अवस्थाओं में स्वामी जी महाराज कभी एक बार भी घबराये नहीं और उनकी मुद्रा सदा शान्त रहती थी। वे समुद्र की तरह सदा गम्भीर थे।

(५) जब आर्यसत्याग्रह का केन्द्र मनमाड़ में था, तब एक दिन वहाँ १००० सत्याग्रही इकट्ठे हो गये। उनमें से बहुत से दूध माँगने लगे। मनमाड छोटा सा नगर था। वहाँ एक दम इतना दूध प्राप्त होना असम्भव था। कुछ सत्याग्रही उद्दण्ड थे। वे कहने लगे कि प्रबन्धक लोग स्वयं तो दूध पीते हैं और सत्याग्रहियों को नहीं देते। वे स्वामी जी महाराज की सेवा में गया और कहा कि इस समस्या

को कैसे हल किया जाये। उन्होंने कहा कि कल प्रातः नदी में स्नान से लौटने पर इस समस्या को हल कर दिया जायेगा। दूसरे दिन प्रातः जब नदी से लौट रहे थे, तो मैंने स्वामी जी महाराज से समस्या का हल पूछा, तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि समस्या का हल यह है कि आज से सत्याग्रह शिविर में किसी को भी दूध नहीं दिया जायेगा। उसके बाद कभी भी शिविर में दूध नहीं लाया गया था। स्वयं भी स्वामी जी महाराज ने उसके बाद दूध नहीं पिया था। जब तक सत्याग्रह चलता रहा।

(६) इसी प्रकार मनमाड में एक और समस्या पैदा हुई। सत्याग्रही स्वयंसेवक कपड़े माँगने लगे। इस माँग पर शिविर में बड़ी हलचल हो गई। इस समस्या को हल स्वामी जी महाराज ने इस प्रकार किया। उन्होंने कहा जो सत्याग्रही स्वयंसेवक कपड़ा माँगे उसे मेरे पास भेज दिया करो। स्वामी जी महाराज ने स्वयं वस्त्र त्याग दिये और केवल एक छोटी धोती में रहने लगे। इनके बाद जो भी सत्याग्रही स्वयंसेवक उनसे कपड़े माँगने के लिये आता, उनको यही उत्तर देते थे कि मेरे तो अपने पास ही कोई वस्त्र नही नहीं है तुम्हें कहाँ से दूं। तब वह चुप होकर चला जाता। ●

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का जीवन

(श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक, देहली)

हैदरावाद का धर्म्म युद्ध अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। श्री स्व. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी फील्ड मार्शल के रूप में मनमाड के शिविर से उसका भव्य संचालन कर रहे थे। इससे पूर्व शोलापुर के शिविर से उसका संचालन उन्हीं के द्वारा होता रहा था वह प्रतिदिन रात को २ बजे सार्वदेशिक सभा कार्यालय दिल्ली को फोन पर दिन भर की

गतिविधि की जानकारी देते और सभा कार्यालय से आवश्यक जानकारी प्राप्त किया करते थे।

एक दिन फोन पर जब उन्होंनें अपनें इस निश्चय की सूचना दी कि वह शीघ्र ही जेल जानें वाले है तो हम अवाक् रह गए। उन्होंनें अपनें निश्चय को व्यक्त करते हुए कहा था—अपनें बच्चों को जेल भेजते भेजते मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न हो गई। मुझे जैसे बड़े का अब बाहर रहना अच्छा नहीं लगता। आत्मा की आवाज को आगे दबाए रखना मेरे लिए कठिन है। आप लोग आयें और कार्य संभाल लें।

सभा मंत्री श्री स्व. प्रो. सुधाकरजी नें उन्हें अपना निश्चय स्थगित रखने की प्रार्थना की परन्तु वह निश्चय बदलने के लिए उद्यत न हुए। जब उन्हे महात्मा नारायण स्वामी जी के इस लिखित आदेश का स्मरण कराया गया कि उनको मिला कर सभा के अमुक अमुक अधिकारी तथा कर्मचारी सत्याग्रह न कर सकेंगे और बाहर रहकर ही सत्याग्रह के संचालन का कार्य करेंगे तो वह एक दम मौन हो गए और यह कहकर फोन रख दिया कि—आप लोगों की इच्छा। आप सब मुझे पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह छटपटाता हुआ देखना पसन्द करोगे।

यह थी उस महाभाग की अनुशासन प्रियता।

सभा कार्यालय में सभा के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता के साथ जिनकी व्यवहारिकता के विषय में उन्हें संदेह हो गया था तीखी कहा सुनी हो गई। वह व्यक्ति अशिष्टता की जिस सीमा तक जा सकते थे चले गए। परन्तु स्वामी जी ने बदले में एक भी अशोभनीय शब्द मुंह से न निकाला। इस पर उस कार्यकर्त्ता को बड़ी लज्जा अनुभव हुई। जब इन पंक्तियों के लेखक नें उस कार्यकर्त्ता के असद् व्यवहार के लिए स्वामी जी सें क्षमा याचना की तो कह दिया—हम संन्यासी हैं मानापमान से ऊपर हैं। हमनें कोई बुरा नहीं मनाया।

यह थी उनके विशिष्ट जीवन की एक झांकी।

बलिदान भवन में सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग बैठक हो रही थी। स्व० श्री भाई वंशीलाल जी और उनके मामूजान श्री पं० दत्तात्रेय प्रसाद जी, हैदराबाद से इस प्रस्ताव के साथ आए थे कि उन्हें सामूहिक सत्याग्रह की अनुमति दी जाय। यदि सभा अनुमति न देगी तो वे अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखेंगे। अनुनय, विनय, आवेदन पत्रों तथा शिष्ट मंडली की भेंट का कोई अभीष्ट फल न निकला और न निकलने की आशा ही थी। सभा मंत्री श्री स्व० प्रो० सुधाकर जी इस प्रस्ताव से पूर्ण सहमत थे।

अन्तरंग बैठक में सामूहिक सत्याग्रह के प्रश्न पर बड़ी ले दे हुई। सामूहिक सत्याग्रह के प्रस्ताव की स्वीकृति में भी अड़ंगे बाजी से काम लिया गया। परन्तु सभा मन्त्री तथा श्री भाई वंशीलाल जी की दृढ़ता के फल स्वरूप प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा। सत्याग्रह संचालन का भार महात्मा नारायण स्वामी जी के कंधों पर डाला गया। स्वामी जी महाराज ने यह भार इस शर्त पर स्वीकार किया कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को उनके दाहिने हाथ के रूप में काम करना होगा जो उन दिनों सभा के कार्य कर्त्ता प्रधान के रूप में काम कर रहे थे। उन दिनों सभा के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त थे। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने जो बैठक में मौजूद थे स्वामी जी के निर्णय को बिना किसी झिझक के स्वीकार कर लिया।

आर्यसमाज के हित और महात्मा नारायण स्वामी जी के प्रति प्रेम की इस भावना से सभा बड़ी प्रभावित हुई थी।

१९३८ के मध्य में श्री महात्मा नारायण स्वामी जी, श्री आचार्य रामदेव जी तथा श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी निजाम राज्य के अधिकारियों से भेंट करने के लिए हैदराबाद गए थे। वापसी में सड़क पर स्थित एक भोजनालय में भोजन किया। श्री महात्मा

नारायण स्वामी जी और आचार्य रामदेव जी खाना खा रहे थे। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज नियमानुसार ठीक १२ बजे (दोपहर) भोजन करके वहां से खिसक गए। सभा के कार्य कर्त्ता ने जो इन महानुभावों के साथ थे उनकी खोज की। देखा कि स्वामी-जी के पास के एक खेत में ठेले का तकिया लगाए जमीन पर लेटे हुए हैं। जब महात्मा नारायण स्वामी जी और स्व० श्री आचार्य रामदेव जी ने स्वामी जी को उस अवस्था में लेटे हुए देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

वस्तुतः स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी सादगी और फक्कड़पन के सजीव प्रतीक थे।

लोहारू के मुस्लिम रजवाड़े में आर्यसमाज के अधिकारी की रक्षा का प्रश्न उठने पर स्वामी जी महाराज ने अपने को सबसे आगे किया। मुस्लिम गुँडों के डंडों के प्रहारों को हंसते हंसते सहन किया। मुँह से उफ तक न की। होठों पर स्वाभाविक मुस्कान थी। शरीर लोहू लुहान था। परन्तु चेहरे पर शान्ति विराज रही थी।

क्षमाशील दयानन्द के अनन्य भक्त आर्य संन्यासी की क्षमा शीलता और सहिष्णुता से लोहारू का नवाब इतना प्रभावित एवं लज्जित हुआ कि उसने स्वयं अपने राज्य में हुए दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगी।

वह पर्वत के समान ऊंचे और समुद्र के समान धीर, गंभीर और मर्यादावान् थे। वह एक दल विशेष से सम्बद्ध समझे और कहे जाते थे परन्तु वह असूलों और आर्यसमाज के हित को पार्टी से ऊपर रखते थे। अपने स्मारक के सम्बन्ध में वह इस उक्ति को दुहराया करते थे कि—यदि मैंने कोई स्मरण रखने योग्य कार्य किया है तो वही कार्य मेरा स्मारक होगा। यदि न किया होगा तो मेरा कोई भी स्मारक मेरी स्मृति को सुरक्षित न रख सकेगा। स्वामी जी

महाराज ने उपदेशक विद्यालय लाहौर के आचार्य, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (दिल्ली) के उप प्रधान कार्य कर्त्ता प्रधान, देश विदेश (मोरिशस, पूर्वी० एवं दक्षिण अफ्रीका) में प्रचार साहित्य सृजन, हैदरावाद तथा गोरक्षा आन्दोलन के एक संचालक के रूप में जो कार्य किए हैं वे ही उनके सच्चे स्मारक हैं जिसे समय के तूफान भी हृदय पट पर से न मिटा सकेंगे। वह उस फूल के सदृश थे जिसकी सुन्दरता तो नष्ट हो जाती है परन्तु जिसकी मधुर सुगन्धि की याद सदा बनी रहती है। ●

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के चरणों में

(श्री पं० नरेन्द्र जी, हैदराबाद)

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के चरणों में बैठकर अध्ययन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है। स्वामी जी आर्यसमाज के उन चोटी के संन्यासियों में थे जिन्होंने आर्यसमाज की शक्ति और उसके प्रचार को सुदृढ़ करने में दिनरात एक कर दिया। सच्चे अर्थों में वह परिव्राट् थे। लाहौर में श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय में स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश हम विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। सिद्धान्तों को समझाने की शैली स्वामी जी की कुछ ऐसी थी कि वह तत्काल हृदय पर अंकित हो जाती थी और दिल में उतर जाती फिर दिल से उनकी सिद्धान्त समीक्षा का प्रभाव मिटना असम्भव था। बात बात में कहानियों और चुटकलों द्वारा गहरे से गहरे विषय को सरल बनाकर समझाने की विशेषता तो स्वामी जी की अपनी एक निराली ही थी। हम विद्यार्थियों को ऐसे आचार्य के चरणों में बैठकर थोड़ा बहुत कुछ सीखने का जो

सौभाग्य मिला है वह मेरे जीवन की एक अक्षय सम्पत्ति है। जब इस अतीत की प्रेरणाप्रद स्मृतियां हृदय में जाग उठती हैं तो हृदय और मस्तिष्क पर स्वामी जी का भव्य शरीर और दीप्तिमय मुखमंडल का चित्र खिंच जाता है।

हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में स्वामी जी के विशाल सत्याग्रह के प्रबन्ध को देखकर हैदराबाद के आर्यजगत् के प्राण स्वर्गीय पण्डित विनायकराव जी विद्यालंकार बैरिस्टर ने कहा था कि स्वामी जी लोहे के धातु से बने मालूम पड़ते हैं। चेहरे पर न थकान, और न शरीर पर कार्य के बोझ की कोई रेखा ही दिखाई देती है। स्वामी जी हर समय प्रसन्न वदन और एक मस्त फकीर की तरह रहते थे। उनका जीवन उनकी आत्मशक्ति का ही द्योतक था। थकना और बैठे रहना उनके जीवन में असम्भव शब्द के रूप में थे। आर्यसमाज की बहुमुखी प्रगति के उज्ज्वल इतिहास के निर्माण में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का योगदान सदा स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

स्वामी जी का त्याग, सादा जीवन, प्रचार की लग्न, सिद्धान्तों की मर्मज्ञता और उनका धैर्य व सहनशीलता इत्यादि गुण आज भी हम आर्यों को प्रेरणा दे रहे हैं ताकि हम अपने आपको सच्चा और निष्ठावान् आर्य तथा वैदिक धर्मी बना सकें। मैं तपस्वी वीतराग संण्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के चरणों में श्रद्धा के विनम्र सुमन समर्पित करता हूं। ●

पूज्य स्वर्गीय आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

(ले० श्री शिवदत्त सिद्धान्त शिरोमणि मौ० आ० बी० ए०)

मैंने स्वर्गीय पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर एवं संस्थापक दयानन्द मठ दीनानगर के शुभ दर्शन सर्वप्रथम १९२३ में किये थे जब वह करांची मेल से डेरानवाब रेलवे स्टेशन से गुजरते हुए लाहौर जा रहे थे। उस समय मेरे साथ मेरे अनन्य मित्र स्व० म० विष्णुदत्त जी तथा डेरा नवाब रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर मियां अल्लाह यार खां के सुपुत्र मि० नज़ीर अहमद इत्यादि कई मुसलमान भी खड़े थे। तब स्वामी जी महाराज "वैदिक धर्म की जय" "स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की जय", "स्वामी दयानन्द जी महाराज" की जय के नारों के दरमियान रेल के डब्बे से मुह निकालकर हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए अपने ओजस्वी मुखमंडल तथा लम्बे सुडौल शरीर के कारण दर्शकों पर जादू का प्रभाव डाल रहे थे और दर्शक सब ओर यही कहते सुने जाते थे, क्यों न हो आखिर तो स्वयं बाल ब्रह्मचारी तथा अपने गुरु बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द स्वामी जी के सच्चे भक्त तथा चेले ही तो हैं ना? "खुदा यह नूर अपने खास खास बन्दों को देता है" मियां अल्लाह यार खां ने कहा। सब हिन्दू तथा दूसरे दर्शक यही कह रहे थे "कभी कभार ऐसे महापुरुषों के दर्शन होते हैं" और इन जैसे नेक बुजुर्गों के दीदार किस्मत वाले इन्सानों को ही नसीब होते हैं" मेरे सहपाठी श्री चरागशाह ने कहा था। एक कट्टर मुसलमान मियां अब्दुल करीम ने कहा "खुदा सब कौमों में ऐसे पैगम्बर भेजकर उनको राहेरास्त पर लाने की कोशिश करता है" इत्यादि इत्यादि चर्चाओं के बीच कुछ लोगों ने अपने शहर

(डेरानवाब) के प्रसिद्ध आमों की एक टोकरी भी उनको भेंट की थी जिसमें से आधे आम तो उन्होंने दर्शक बच्चों में ही बांट दिये थे। उन आमों में "गोदु पसन्द" तथा "चोथू पसन्द" प्रसिद्ध आम भी थे जिनमें से कुछ आम निकाल कर जब स्वामी जी महाराज ने दर्शक बच्चों में बांट दिए तो साथ खड़े हुए श्री पं० जगन्नाथ जी ने कहा "ये आम तो खासतौर पर आपके लिये थे आपने बांट क्यों दिये महाराज ?" "मैंने दो आम अपने लिये भी रख लिये हैं। चिन्ता मत कीजिए। आपका धन्यवाद।"

इतने में गाड़ी ने सीटी दी परन्तु अभी तक सब लोग उनके चरण नहीं छू सके थे अतः गार्ड महोदय ने दूसरी सीटी १, १॥ मिनिट देर से दी। गाड़ी को चलना था, चल दी। परन्तु प्लेटफार्म पर एकत्र दर्शकों (हिन्दू मुस्लिम दोनों) में अभी यह चर्चा जारी थी कि "ऐसे तेजस्वी (पुरजलाल) बन्दों की खातिर ही खुदा इस दुनिया को चला रहा है वरन् हमारी करतूतें तो कुछ और हैं" श्री हक़ नवाज़ ने कहा। तब मेरे कानों में एक बड़े जगद्विजेता के ये प्रसिद्ध शब्द गूंजने लगे "I came, I saw, I conquerred" "मैं आया, मैंने नज़र दौड़ाई; मैंने विजय प्राप्त कर ली" उसी समय मेरे एक सहपाठी मुसलमान ने "स्वामी साहिब ज़िन्दा बाद" का नारा लगाया और गाड़ी चल दी।

स्वामी जी महाराज के व्यक्तित्व तथा व्यवहार ने ही विवश करके मौ० अब्दुल अज़ीज़ जी के मुख से यह कहलवा दिया कि इस्लाम से पहले भी तो सच्चे खुदा की पूजा होती थी और वह होती थी ऐसे ही खुदाप्रस्त बन्दों के व्यवहार को देखकर और उनसे सबक सीखकर।" और यह मौलवी साहिब हम हिन्दू आर्य बच्चों को सदा काफ़िर कहकर सम्बोधित करते परन्तु जब स्वामी महाराज के दर्शनों के पश्चात् उन्होंने आर्यसमाज के साहित्य को

देखने की इच्छा प्रकट की और मैंने "मूर्त्तिपूजा पर लिखी हुई (उर्दू में) एक पुस्तक उनको पढ़ने को दी तो उसे पढ़कर वह कहने लगे अरे भाई ! तुम्हारी किताब को पढ़कर तो मुझे ऐसा लगता है कि सिर्फ तुम समाजी ही सच्चे खुदा के पुजारी हो शेष सब (मुझ समेत) बुतपरस्त हैं क्योंकि तुम्हारी दी हुई "मूर्तिपूजा की हकीकत" किताब ने मेरे दिल में भी यह सवाल पैदा कर दिया है कि क्या खान कअबः की तरफ या पूरब की तरफ या मग़रिब की तरफ मुंह करके नमाज़ अदा करना भी एक तरह की हल्की सी बुतपरस्ती ही है। मैं तुम्हारे "स्वामी" साहिब के चेहरे को देखकर भी इस सोच में पड़ गया हूं कि क्या सिर्फ मुसलमान ही खुदापरस्ते हैं या स्वामी (स्वामी) दयानन्द साहिब के चेले (तुम जैसे काफ़िर) भी सच्चे खुदा के सच्चे बन्दे हो सकते हैं ? और हुआ यह कि उन्होंने अपने हिन्दू शिष्यों को "काफ़िर" कहना छोड़ दिया जबकि इससे पूर्व वह प्रत्येक हिन्दू बच्चे को "अरे काफ़िर" कहकर बुलाते थे, (विशेषतः मुझे और श्री महाशय विशिनदास जी को) क्योंकि हम आर्यसमाजी मशहूर हो चुके थे और हमनें एक रुपया दो आने में एक जिल्द बंधा उर्दू सत्यार्थप्रकाश खरीदकर पढ़ने के लिये उनकी सेवा में भेट किया था और उसे उन्होंने (उनके अपने शब्दों में) बड़े गौर और पक्षपात् की ऐनक उतार कर पढ़ा था और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के उपर्युक्त दर्शनों ने सोने पर सुहागे का कार्य किया था।

मेरे पूज्यपाद गुरु स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का आदर्श जीवन

(लेखक—स्वा० पूर्णानन्द सरस्वती—आर्यसमाज बड़ौत मेरठ)

बड़े हर्ष का विषय है कि आर्यमर्यादा का यह अंक 'स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक के नाम से निकाला जा रहा है इसमें मेरे पूज्यपाद गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की गुरुगरिमा का उल्लेख होगा। मुझे भी प्रशंसित स्वामी जी के चरणकमलों में बैठकर अपने जीवन पथ को प्रशस्त करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। सबसे पहले मेरा सम्पर्क स्वामी जी के साथ सन् १९२४ के अन्तिम दिनों में आर्यसमाज पानीपत के मन्दिर में हुआ था। मैं उन दिनों में दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर की 'वाचस्पति' परीक्षा को अधूरी छोड़कर आर्य प्रतिनिधि सभा करनाल में प्रचार कार्य करने लगा था। उन्हीं दिनों में आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुदत्त भवन लाहौर में 'दयानन्दोपदेशक विद्यालय' खोलने की घोषणा कर दी थी और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को उसका आचार्य नियत कर दिया था। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा स्वामी सत्यानन्द जी महाराज भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये पंजाब का दौरा करते हुए पानीपत भी आये थे। और वे दो तीन दिन आर्यसमाज मन्दिर पानीपत में ठहरे थे। स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के साथ मेरा पहले ही ब्राह्ममहाविद्यालय लाहौर में परिचय हो चुका था; वे मुझे किसी विशेष प्रयोजन के लिये काशी आदि में विद्या प्राप्ति के लिये भेजना चाहते थे परन्तु उस समय मैंने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। उन्होंने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को मेरा पूर्ण परिचय दे दिया था। उन दोनों महानुभावों ने बलपूर्वक मुझे प्रेरणा की कि अभी तुम्हारी

विद्या अधूरी है। अतः तुम्हें और कई वर्ष पढ़ना चाहिये। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि यदि तुम काशी जाना स्वीकार करो तो हम तुम्हारे व्यय का भार अपने ऊपर ले लेंगे। परन्तु मैंने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि मैं केवल एक वर्ष और पढ़ सकता हूं, अधिक नहीं। दोनों महानुभावों ने मेरी बात को स्वीकार कर लिया। और मेरा दयानन्दोपदेशक विद्यालय में प्रविष्ट होने का पूर्ण निश्चय हो गया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सहवास में दो तीन दिन रहकर मुझे अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ। उनके तप, त्याग, बल, पराक्रम, तेजस्विता, सरलता, वात्सल्य, सौजन्य और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार ने मेरे ऊपर चुम्ब-कीय विद्युत् जैसा प्रभाव डाला। मुझे यह निश्चय हो गया कि स्वामी जी के चरणकमलों में बैठकर मैं अवश्य ही अपने जीवन पथ को प्रशस्त कर लूंगा। उन दिनों में स्वामी जी ने मुझे क्रियात्मक रूप से योगासन और प्राणायाम की विधि सिखलाई थी। योग के लिये उन्होंने मुझे तीन ही आसन उपयोगी बतलाये थे—१. पद्मासन, २. अर्द्धपद्मासन, ३. सिद्धासन। मैं अपनी योगसाधना से आज तक उन्हीं आसनों और प्राणायामों का उपयोग करता रहा हूं। उसी समय से मेरा यह निश्चित मत हो गया था कि स्वामी जी महाराज एक योगनिष्ठ संन्यासी हैं। स्वामी जी के इस उपकार के लिये मैं उनका आजीवन आभारी रहूंगा।

मैं अप्रैल सन् १९२५ में लाहौर जाकर श्री स्वामी जी के चरणकमलों में उपस्थित हो गया था। स्वामी जी के चरणों में एक वर्ष के अर्से में जो पुस्तकों का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ वह तो एक गौण वस्तु थी। परन्तु तप, त्याग, सादगी, निर्भयता, देशभक्ति, परदुःख हरण, ब्रह्मचर्य, दृढ़ संकल्प, सत्य निष्ठा, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा और सिद्धान्तों में अडिगता की क्रियात्मक खुली किताब तो गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का देह ही था

जो आयु भर ज्योति स्तम्भ के समान मेरे जीवन का पथ प्रदर्शन करता रहा। और स्वामीजी के साथ मेरा २७ वर्ष तक अटूट सम्बन्ध रहा।

मैंने अपने जीवन में किसी ऐसे सँन्यासी को नहीं देखा, जिसमें एक साथ इतने गुण विद्यमान हों। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण था कि जब एक बार उनके साथ किसी का सम्पर्क हो जाता था फिर वह टूटने नहीं पाता था। उनमें दुःखियों के प्रति इतने ऊंचे दर्जे की सहानुभूति थी कि उनकी छत्रछाया में पहुंचकर एक व्यक्ति यह अनुभव करता था कि मैं एक महान् वृक्ष की सघन छाया में आ गया हूं।

उनके अनेक गुणों में से एक बड़ा गुण यह था कि अपने शरीर और इन्द्रियों पर उनका पूर्ण नियन्त्रण था, और अपने सहयोगियों और आश्रितों को भी नियन्त्रण और अनुशासन में रखने की भी उनमें अद्भुत क्षमता थी।

एकवार होली के दिन बाहर के विद्यार्थियों ने उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियों के साथ होली खेली और रंग आदि डाल दिया। स्वामी जी उस समय विद्यालय में नही थे। जब स्वामी जी विद्यालय में आये तो उनको पता चला कि आज विद्यालय में रंगारंगी हुई है। स्वामी जी ने सब विद्यार्थियों को कठोर ताड़ना दी, प्रायश्चित के रूप में एक समय का भोजन बन्द कर दिया गया। और जिन वस्त्रों पर एक छींट भी रंग की लग गई थीं, उन सबको जलवा दिया। अपने शरीर, मन और इन्द्रियों पर उनका कितना वशीकार था, इसके सम्बन्ध में पूज्य श्री स्वामी वेदानन्द जी ने बड़े स्वामी जी की उपस्थिति में ही एक घटना सुनाई और कहा कि तुम स्वामी जी के इस शरीर को देखकर ही आश्चर्य करते हो! स्वामी जी का शरीर इस समय तो बहुत कम हो गया है। परन्तु अफ्रीका आदि

देशों की यात्रा करने से पूर्व तो स्वामी जी हाथी के समान दिखाई देते थे। जब एक बार स्वामी जी उत्तरप्रदेश के दौरे पर गये थे, उस समय दूर दूर से लोग उनको देखने आया करते थे। जब आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब नें स्वामी जी को अफ्रीका में प्रचारार्थ भेजने का निश्चय कर लिया, तो स्वामी जी ने विदेशों में प्रचार कार्य की सब प्रकार की विघ्न वाधाओं का ध्यान करते हुये उनको सहन करने के लिये अपने आपको तैय्यार किया। और चालीस दिन तक स्वामी जी नें सिवाय जल के और कोई आहार नहीं किया। उस समय से स्वामी जी के शरीर में उतनी स्थूलता नहीं रही। तथापि स्वामी जी को हम जब स्नान करते हुए देखते थे तो एक बड़ी वाल्टी को जो पानी से लवालब भरी होती थी, एक हाथ से उठाकर अपने सिर पर इसी प्रकार से उंडेल लेते थे जिस प्रकार हम लोटे को अपनें सिर पर उंडेल लेते हैं। इसी प्रकार पूज्यवर स्वामी जी शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के शिखर पर पहुंच चुके थे। अतः संसार का उपकार करनें के इच्छुक आर्यों का स्वामी जी के जीवन का अनुकरण करना चाहिये। इति

●

सर्व पूज्य मूर्धन्य आर्य नेता

(श्री पं० भरतसिंह शास्त्री आ. स. लोहारु)

वीतराग परमहंस स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सम्पर्क में जो एक बार भी आ जाता था, वह उनकी तरफ आकर्षित हो ही जाता था, वे इतने संयमी यति थे। वह उन यति को अपना परम हितैषी समझने लगता था, इस प्रकार का उनमें आकर्षण था। फिर क्यों न वे सर्व पूज्य नेता बनते।

जहाँ वे आर्य सिद्धान्त के महान् विद्वान् थे वहाँ वे महान् राजनीतिज्ञ भी थे, इस लिये राजनीतिक लोग, राज्य के मन्त्रि लोग उनसे विचार विमर्श करने के लिये दयानन्द मठ दीनानगर में उन की सेवा में उपस्थित होकर उनसे मार्ग दर्शन लाभ पाते थे।

जितने वे आत्मिक शक्ति से युक्त थे उतने ही वे शारीरिक बल में भी बलिष्ठ थे। २६ मार्च १९४१ की घटना है—



जब श्री स्वामी जी महाराज आर्यसमाज लोहारू के नगर कीर्तन का नेतृत्व कर रहे थे। तब लोहारू शहर के थाने के साथ ही लोहारू के नवाब की योजनानुसार मदहोश गुण्डों ने नगर कीर्तन पर लाठी कुल्हाड़ी फर्शे आदि से आक्रमण किया तो आप ने सब आर्यों को शान्त रहने का आदेश दिया। स्वयं सब से अग्रिम होने के कारण आक्रमण का सबसे अधिक जोर आप पर ही था। प्रथम तो आक्रमण कारियों के वार को अपने डण्डे पर रोकते रहे, परन्तु जब डण्डा टूट

गया तो आप के सिर पर कुल्हाड़ी व फर्शों के प्रहार होने लगे। आप का सिर कट फट गया और चारों तरफ से खून के फव्वारे छूटने लगे तब भी आप वहीं पर खड़े रहे। आक्रमणकारी भयभीत होकर भाग गये। आप में इतना बल था कि आप ऐसी अवस्था में भी गिरे नहीं और पैदल ही चल कर एक मील स्टेशन पर पहुंचे। स्टेशन के अधिकारी लोग आप की अवस्था को देख कर हैरानी करने लगे कि यह किस लोहे का बना हुआ व्यक्ति है। वहां से वे इरविन हस्पताल चले गये।

आप परोपकारी इतने महान् थे कि आप छोटे से छोटे व्यक्ति का कार्य भी साधने में संकोच नहीं करते थे। में उपदेशक विद्यालय लाहौर में प्रविष्ट होना चाहता था। परन्तु उस समय वहां प्रवेश पाना हँसी खेल न था। बड़ी कठिनता से प्रवेश मिलता था। जब आप इरविन हस्पताल में थे, तब स्वामी कर्मानन्द जी आप की सेवा में संलग्न थे। जब कुछ आराम हुआ तो स्वामी कर्मानन्द जी गुरुकुल मटिण्डू मिलने के लिये चले गये। तब मेरे गुरु श्री देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री ने कहा कि ये उपदेशक विद्यालय में जाना चाहते हैं। उन्हें वहाँ प्रवेश दिला देवें। उन्होंने कहा कि आप फार्म मंगवा कर भरवा दो। स्वामी कर्मानन्द जी ने स्वामी जी महाराज से जिक्र किया तो उन्होंने तत्काल ही उपदेशक विद्यालय के आचार्य को पत्र लिख दिया। जबकि इससे पूर्व उन्होंने मुझे देखा भी नहीं था। इस प्रकार दूसरे का हित साधने में हमेशा तत्पर रहते थे। उस बार उपदेशक विद्यालय में १५५ में से केवल ५ छात्र ही लिये थे। जिनमें मेरा नाम सर्वप्रथम था।

इसके पश्चात् जब वे लाहौर पहुंचे तो मैंने उनका प्रथम वार दर्शन किया तो वे मेरे से सब हालात पूछे और मुझे बहुत अधिक स्नेह दर्शाया। इसके पश्चात् मैंने स्वयं उनके सान्निध्य में रहकर उनके गुणों को देखा है।

इसी प्रकार की एक घटना इस प्रकार से जब भारत आजाद हुआ तो सरदार पटेल ने रियासतों का विलीनीकरण कर दिया तो विधान निर्मात्री सभा के लिये रियासतों के प्रतिनिधि भी चुने गये। पंजाब की १४ रियासतों की तरफ से चौ० निहालसिंह जी तक्षक को चुना गया। परन्तु वृषभान ने उन पर आपत्ति की। उसके निर्णय के लिये श्री टेकचन्द जो महाजन को नियुक्त किया। श्री चौ० निहालसिह जी तक्षक लोहारू में मेरे सम्पर्क में आ चुके थे। उन्होंने मुझे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से कहलवाने के लिये कहा। हम दोनों श्री नारायण दत्त जी की कोठी पर उन से मिलने गये। जब उन्होंने स्वामी जी महाराज से निवेदन किया तो वे तत्काल ही उसी अवस्था में उठ के उनके साथ श्री टेकचन्द जी के पास चले गये और उन्होंने उनके सम्बन्ध में कह दिया। इस प्रकार से वे सब का बराबर हित करते रहते थे। इसी कारण वे सबके अपने बन जाते थे।

मैं आर्यसमाज के कुछ बड़े बड़े नेताओं के सम्पर्क में आ चुका हूं और मैंने अपने निजी पर्यवेक्षण से यह जाना है कि वे आर्यसमाज के हित से बढ़ कर अपने सुख तथा स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझते हैं। परन्तु कर्मठ श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने पूर्ण जीवन ही आर्यसमाज के हित के लिये लगा रक्खा था। सन् १९४५ ई० की घटना है कि—

आर्यसमाज लोहारू के १९४० ई० में नगर कीर्तन पर आक्रमण होने के पश्चात् आर्य समाज मन्दिर के निर्माण का कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने हाथ में लिया, परन्तु कारण वश वह निर्माण कार्य मध्य में ही रुक गया। किसी सभा व आर्य नेता को यह चिन्ता न हुई कि मन्दिर निर्माण कार्य भी पूर्ण करना

है। परन्तु इस परम हंस को यह चिन्ता बनी हुई थी कि यह कार्य पूर्ण होवे।

उस समय लोहारू प्रदेश में आर्य समाज ने पाठशालायें चला रखी थीं। एक आर्य पाठशाला चहड़ खुर्द में भी चलती थी। वहां के प्रमुख कार्य कर्त्ता श्री भूपालसिंह जी आर्य ने उस पाठशाला का उत्सव करना चाहा और एक पत्र स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को लिखा कि आप किन तिथियों में पधार सकते हैं उन तिथियों में हम अपनी पाठशाला का उत्सव रख लेंगे।

उस महापुरुष ने पत्रोत्तार लिखा कि मैं लोहारू क्षेत्र में तब ही पैर रक्खूंगा जब वहां के आय समाजमन्दिर का निर्माण पूर्ण हो जावेगा। श्री स्वामी ईशानन्द जी को वह पत्र दिखलाया और कहा कि वहाँ जाकर देखो कि कितना व्यय होवेगा। वे उस समय लोहारू आये और उस का अनुमानिक व्यय उस समय नौ हजार लगाया। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जो महाराज ने कहा कि पहिले ३००० (तीन हजार) रुपये वहाँ के आर्य एकत्र करें उसके पश्चात् छः हजार रुपये मैं दिलवा दूंगा। और स्वामी ईशानन्द जी महाराज को जिन के उस समय अंग्रेजी सरकार की तरफ से वारंट थे वहां भेज कर मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण कराया। यह लग्न और तड़प उस महात्मा के हृदय में थी ही यदि वे प्रयत्न न करते तो सम्भवतः इस मन्दिर का निर्माण पूर्ण ही न हो सकता क्योंकि सब सभाओं व आर्य नेताओं ने इस तरफ से ध्यान हटा लिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस महात्मा में कितनो शक्ति थी तथा आर्य समाज से कितना प्यार था और प्रत्येक व्यक्ति से कितना स्नेह था। किस प्रकार से दूसरे का परोपकार करते रहते थे।

अन्त में भी गो रक्षा कार्य करते करते खानपान की परवा न कर के कार्य में लगे रहे और उसी से बीमारी लेकर हम से विदा हुए। उन के स्थान की पूर्ति आज तक आर्य जगत् में नहीं हुई है। ●

परमहंस स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती महाराज जी

(श्री पं० महेन्द्रकुमार जी शास्त्री अधिष्ठाता दयानन्द अनाथालय, देहली)

वैदिक संस्कृति से संस्कृत इळा माता की प्रेरणा से निर्मोह, त्याग, तपस्या, कर्मठता, ओजस्विता, निर्भीकता, सहिष्णुता, अध्यात्मिकता के मुक्ताओं के चयन करने वाले परमहंस।

निज शरीर आत्मा और समाज तथा राष्ट्र के नियन्त्रण तथा सुरक्षा के लिये प्रतिक्षण कटिबद्ध रहकर सतपथ का दर्शन कराने वाले स्वामी।

मानव आत्मा के जन्मसिद्ध अधिकार स्वतन्त्रता के ध्येय की सिद्धि के लिये अहर्निश मन वचन कर्म से श्रम में निरन्तर आनन्दानुभूति करने वाले स्वतन्त्रानन्द।

सरस्वान्, भास्वान्, भगवान् के आत्म स्रोत से निःसृत तपः पूत आदिजन मानस में प्रादुर्भूत वरदा वेद माता सरस्वती का अवगाहन करने वाले सरस्वती।

आर्यावर्त के लाखों आर्य मानव मनों में अभिनन्दित होकर विराजमान महाराज।

ऐसे महाराज श्री के चरणों में रहकर सौभाग्य से यदा कदा श्रुत एव दृष्ट तथा व्यवहृत घटनाएं जो स्मृति पटल पर सदा अंकित रहेंगी उनमें से सर्वजन हिताय कुछ प्रस्तुत कर रहा हूं।

(१) आर्य कहने का हमें अधिकार कैसे ?

सन् १९४३ में दयानन्द उपदेशक विद्यालय से ग्रीष्मावकाश

के समय महाराज के दर्शनार्थ दयानन्द मठ दीनानगर गया। वहां ब्राह्ममुहूर्त में आचार्य प्रवर के साथ भ्रमणार्थ समय में मैंने जिज्ञासा प्रकट की कि आर्य के शास्त्रानुमोदित लक्षण जब तक हममें नहीं तो हम आर्य क्यों कहें ?

"गुरुदेव जी ने कहा बाबू जिस प्रकार मनुष्य में मनुष्य के पूर्ण लक्षण न होते हुए भी हम अपने आप मनुष्य का व्यवहार करते हैं उसी रूप में जितने अंश में हममें आर्यत्व है उतने अंश में हमें आर्य कहना चाहिये।"

(२) बड़े यदि कार्य नहीं करेंगे तो छोटे कहां से सीखेंगे

उसी दिन मध्याह्नोत्तर ४ बजे वाटिका में कार्य करने की घण्टी लगी मैं भी वाटिका में पहुंचा, जाते ही सामने सूखे पेड़ के तने को पकड़कर महाराज जी हिला रहे थे।

विनम्र भावना से मैंने कहा आश्रमवासी हम लोग पर्याप्त संख्या में हैं इसको खोदकर निकाल देते हैं ?

"महाराज जी ने कहा कि यदि मैं स्वयं काम नहीं करूंगा तो तुम लोग कैसे सीखोगे, किसी को शिक्षित करने के लिये व्यवहार की शिक्षा देना आवश्यक है। बड़े यदि कार्य नहीं करेंगे तो छोटे कहां से सीखेंगे।"

(३) हम तो पके फल हैं तुम्हें अभी पकना है

उसी दिन सायंकाल भोजन करने के उपरान्त महाराज जी से जानना चाहा—महाराज ! आपने भोजन नहीं किया ? उत्तर मिला हम तो पके फल हैं तुम लोगों को अभी पक कर दायित्व सम्भालना है अतः युवकों को दोनों समय अवश्य ही भोजन करना चाहिये। तभी वलिष्ठ शरीर बनेगा। वलिष्ठ शरीर रूपी साधन साधना की भट्टी में तप कर ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

हमको अब अधिक चिन्तन करना होता है। अतः हमें एक समय का भोजन ही पर्याप्त होता है। योग में अधिक भोग को आवश्यकता नहीं।

(४) साधु को स्वाद नहीं पेट भरना होता है

सन् १९४५ आर्य महाविद्यालय किरठल के उत्सव के पश्चात् स्वामी जी महाराज से मैंने अपने गांव में पधारने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार करने पर गांव में उनके साथ गया। मैं घर पर मध्याह्न का भोजन परस रहा था। भोजन को सामग्री में अचार भी रखा था। महाराज जी ने पहले ग्रास में अचार को एक पूरी फांक ले ली और दूसरे ग्रास में दूसरी, इस पर मैंने यह समझकर कि महाराज जी को अचार अधिक रुचिकर है। अतः और अचार ले आया और मैंने दो फांक और थाली में परोस दी। महाराज जी ने पूर्व की भांति उनको भी एक ग्रास में क्रमशः ग्रहण कर लिया और उसके पश्चात् खीर, हलुआ, शाक आदि का सम्मिश्रण करके उपयोग किया। इस पर मुझ से न रहा गया नटखट बच्चे की भाँति पूछ ही बैठा—महाराज ? इस तरफ तो सारा भोजन बेस्वाद हो गया ? उत्तर मिला "साधु का स्वाद नही पेट भरना होता है" इससे अन्न के तथा अन्नदाता के प्रति आसक्ति नही पनपती।

(५) अधार्योदुर्बलेन्द्रियैः

सन् १९४७-४८ में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से अलवर, भरतपुर और गुडगांव में शुद्धि का कार्य कर रहा था इसी सन्दर्भ में स्वामी जी मे मार्ग दर्शन लने के लिए १३ बारह खम्बा रोड नई दिल्ली में महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुआ। उन्हें नमस्ते किया, देखते ही महाराज ने कहा कमजोर हो गये। मैंने निवेदन किया कि कार्याधिक्य एवं भोजन निश्चित समय पर न होने से स्वास्थ्य ठीक नहीं। गुरुदेव ने कहा देखो तुम शरीर का

विशेष ध्यान रखो गृहस्थ का दायित्व भी तुम्हारे ऊपर है। गृहस्थी के लिये आवश्यक है कि शरीर हृष्ट पुष्ट हो। गृहस्थ (अधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः) दुर्बल इन्द्रियों से नहीं धारण किया जा सकता।

(६) थके नहीं अके नहीं छके नहीं

सन् १९५१ में आर्य अनाथालय पटौदी हाउस दरियागंज दिल्ली के अधिष्ठाता का कार्यभार सम्भाला। स्वर्गीय श्री लाला नारायणदत्त जी ने स्वामी जी को मेरी नियुक्ति की सूचना दी। तो स्वामी जी महाराज लाला जी की मोटरकार से आर्य अनाथालय में पधारे। मैंने महाराज जी से कहा आचार्य जी आपने मुझे उपदेशक बनाया और अब मैंने यह प्रबन्ध का दायित्व ले लिया है। आप मुझे इस सम्बन्ध में शिक्षा दीजिए क्योंकि आप केन्द्रिय अनाथालय रावी रोड के प्रधान रहे हैं। गुरुदेव ने उपदेश दिया कि सस्था संचालन, परिवर्धन करने में कार्यकर्ताओं को अधिक से अधिक कार्य करने पर भी थकान अनुभव नहीं करनी चाहिये। दूसरे किसी के पास कार्यार्थ बार बार जाने पर भी यह सोचकर कि कई बार जाना पड़ गया तो अकना नहीं चाहिये। तीसरे संस्था के साधन पर्याप्त हो गये हैं अतः यह सोचकर छकना नहीं चाहिये, सन्तोष नहीं करना चाहिए। अन्यथा संस्था का विकास अवरुद्ध हो जायगा। इसलिये पंजाबी की कहावत है कि—थके नही, अके नही, छके नहीं इसे अपनाओ।

(७) कार्यकर्त्ता का भी दिल है

सन् १९५२ में स्वामी जी महाराज आर्यसमाज दीवानहाल के उत्सव में पधारे। उत्सव के पहले ही दिन अगले दिन के लिये मैंने महाराज से गृह पवित्र करने के लिये भोजनार्थ आमन्त्रण की प्रार्थना की उनकी स्वीकृति मिल गई। दूसरे दिन रविवार के दिन ऋषि लंगर था प्रातःकाल के प्रोग्राम में महाराज जी पधारे। प्रोग्राम के समापन पर मैं स्वामी जी से गृह पर चलने के लिये प्रार्थना करने

को मंच पर गया तो वहां उपस्थित समाज के अधिकारियों ने कहा स्वामी जी महाराज ऋषि लंगर में पधार कर यहीं भोजन गृहीत करें। स्वामी जी ने कहा मुझे पूर्व कोई इसकी सूचना न थी, आज का भोजन तो महेन्द्र कुमार जी के गृह पर है। इस पर अधिकारियों ने कहा उन्हें हम कह देते हैं स्वामी जी भोजन लंगर में करेंगे। तो तुरन्त स्वामी जी महाराज ने कहा "कार्यकर्त्ता का भी दिल होता है" उन्हें दुःख होगा अब तो मैं उन्हीं के गृह पर भोजन करूंगा।

(८) हम धन के मोह से प्रभु गोद को क्यो छोड़ें

श्री पं० ज्ञान चन्द जी आर्य सेवक भू० पू० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा स्वामी जी के साथ बहुत बड़ी धन राशि लेकर हैदराबाद सत्याग्रह की व्यवस्था के लिए जा रहे थे रेल के सारे दिन की यात्रा में पण्डित जी ने इस धन की सुरक्षा की रात्रि को एक स्टेशन पर ही विश्राम करना था इस पर पण्डित जी ने स्वामी जी महाराज से प्रार्थना की, महाराज जी कुछ घण्टों के लिए आप इस राशि को सम्भाल लें मैं फिर सम्भाल लूँगा स्वामी जी ने उसे ले लिया। पण्डित जी सो गये। स्वामी जी ने उस विपुल राशि को चिप्पी (कमण्डल) में रख कर स्टेशन के सीखचे पर लटका दिया और स्वयं भी सो गये। स्वामी जी के खर्राटों की आवाज सुन कर पण्डित जी यकायक जगे और देखा कि स्वामी जी गहरी नींद में हैं। तुरन्त स्वामी जी को जगाया और कहा महाराज जी राशि कहां है। स्वामी जी ने सीखचे की ओर इशारा किया और कहा वह टंगी है। पण्डित जी बोले स्वामी जी इतनी बड़ी राशि को वहां टांग रखा है उत्तर में महाराज ने कहा घरबार, धन-दौलत, माता-पिता, भाई-बन्धुओं का मोह छोड़ दिया। कार्याधिक्य के कारण दिन भर व्यस्त रहना होता है रात्रि को शयन के समय प्रभु की प्राप्ति होती है "हम धन के मोह से प्रभु की गोद क्यों छोड़ें।

(९) रोग न था

महाराज जी ने एक बार बताया कि कई बार रोग नहीं होता और भ्रांति में रोग समझ कर औषध का उपचार किया जाता है। उसमें हानि होती है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि जब मैं उदासी सन्त था और लोग मुझे बाल्टी वाला कहा करते थे उस समय मण्डली के साथ गुड़गांव जिले के एक गांव के बाहर ठहरना पड़ा। उस स्थान पर एक देवी अपनी पुत्र वधू को लेकर आई और कहने लगी, पुत्र का विवाह हुए १० वर्ष हो गये बहू को पुत्र नहीं हुआ। स्वामी जी महाराज ने बुढ़िया को राख की चुटकी दी और कहा इसको दूध में डाल कर दे देना और बहू को एक वर्ष तक खूब खुराक खिलाना प्रभु अवश्य कामना पूर्ण करेंगे। मंडली के साथ घूम कर लौटते समय महाराज फिर उसी डेरे पर ठहरे। देवी को सन्तों के दर्शन करने की अगाध श्रद्धा थी, दर्शनार्थ डेरे पर आई तो स्वामी जी को देखते ही पहचान गई कि वही सन्त हैं। तुरन्त घर वापिस लौट कर पौत्र को गोदी में ले, पुत्र और पुत्र वधू को कुछ ही समय में ले आई। सब ने प्रणाम किया देवी ने शिशु को महाराज जी के चरणों पर रख कर कहा भगवन् ? आपकी कृपा से मुझे पौत्र के दर्शन हुए। महाराज ने उत्तर दिया :—राख की चुटकी केवल विश्वास के लिए थी बहू रानी को रोग न था अपितु खुराक की कमी थी वह मिल गई और आपकी कामना पूर्ण हो गई।

(१०) ये सभी चले गये मैंने भी जाना है

सन् १९५४ की बात है गोरक्षा आन्दोलन को जीवन देने के लिए स्वामी जी महाराज ने शरीर की ओर ध्यान न किया और साथ नियुक्त कर्मचारी ने भी ध्यान न दिया। रुग्ण हो गये, दिल्ली पधारे, मैं भी दर्शनार्थ गया। चरणों में प्रणाम कर चारपाई के बराबर नीचे

बैठ गया। महाराज जी स्वयं बोले श्री लाला नारायण दत्त जी, श्री लाला ज्ञानचन्द जी, श्री बाबा मिलखासिंह जी जिनके साथ कार्य करने में आनन्द आता था ये सभी चले गये अब मैंने भी जाना है। मैंने निवेदन किया महाराज जी रोग ठीक हो जाएगा। फिर आपसे मार्ग दर्शन मिलेगा। स्वामी जी ने कहा नहीं कुछ दिनों की यात्रा है वह पूर्ण होने जा रही है।

(११) जिसकी बात कभी नहीं टाली अन्तिम समय में भी टाल नहीं सकता

दूसरे दिन मुझे दोपहर बाद महा विद्यालय किरठल के उत्सव पर जाना था अतः प्रातः प्रातः स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हो कर जाने की सूचना दी। महाराज जी ने कहा मुझे भी कल बम्बई जाना है। केवल इस लिए कि "जिस की बात कभी नहीं टाली अब अन्तिम समय में भी टाल नहीं सकता" शरीर का कार्य तो समाप्त हो गया है अब शायद फिर न मिल सकूँगा। तुम जाओ विद्यालय का कार्य भी आवश्यक है। इस प्रकार शरीर छोड़ने से पूर्व ज्ञान होते हुए भी महाराज जी की ओजस्विता गम्भीरता सदा की भाँति मुख-मंडल पर विराजमान थी। महा प्रयाण की तैयारी कर चुके थे। जिससे मिलना था उसका साक्षात्कार कर मिल चुके थे और जिन जिन को कुछ आदेश देना था दे चुके थे। ऐहिक कार्य कलाप समाप्त कर मोक्षधाम के पथिक बने। उस कर्मयोगी को परम तत्व के दर्शन करने पर न मोह न शोक था केवल प्रभु पावन अंक में बैठ कर शाश्वती शान्ति अपना कर शान्त हो जाना था बस शान्त हो गये।

उनके शिष्य एवं भक्त जनों की एक लम्बी शृंखला है उनके सरल जीवन की सरल अनेकों शिक्षा प्रद घटनाएँ हैं। सभी को चाहिए कि आर्य मर्यादा के माध्यम से उनको प्रकाशित करा भविष्य में उनके बृहत् जीवन चरित्र के निर्माण में सहयोगी बने। जिससे मां भारती की भावी सन्तति अपने जीवन ज्योति से आलोकित कर श्रेय के मार्ग का अनुसरण कर लाभान्वित हो।

●

पूज्यपाद श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

(श्री प० हरिदेव जी महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, वेदप्रचार विभाग, देहली)

पूज्यपाद आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को मैं सदा दादा गुरु जी के नाम से स्मरण करता वा कहता हूं। क्योंकि जिन पूज्य गुरुओं के चरणों में बैठकर दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर में मैंने विद्या का अध्ययन किया, स्वामी जी उनके भी विद्यादाता गुरु थे, यथा श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज एवं पं० शिवदत्त जी सिद्धान्तशिरोमणि मौलवी फाज़िल। मुझे श्री पूज्य स्वामी जी के चरणों में बैठने तथा सम्पर्क में रहने का पर्याप्त अवसर मिला, एक बार तो महीनों दयानन्द मठ में उनके निर्देशानुसार उनकी पुस्तक लेखन में लगा रहा, एक पुस्तक 'व्याख्यान माला' उन्होंने मेरे से लिखाई थी, वह पुस्तक विद्वानों एवं सर्वसाधारण

दोनों के लिये समान रूप से उपयोगी थी। परन्तु वह आज तक प्रकाशित नहीं हुई, पता नहीं उसका क्या हुआ। उनकी सेवा में रहते हुए मैंने देखा कि वह समुद्र के समान गम्भीर थे एक ओर चौ० छोटूराम जी जैसे बड़े बड़े मंत्री तथा नेता उनसे सलाह मशवरा करने आते थे। तो दूसरी ओर बड़े बड़े चोर डाकू और पापी लोग भी उनके समक्ष अपनी सारी बातें साधु समझकर सत्य सत्य कह जाते थे। परन्तु क्या मजाल कि किसी बात का किसी को पता भी चल जाये।

उनसे मिलने पर अनेकों नई नई बातों का ज्ञान मिलता था। और उनकी योग्यता, विद्वत्ता, कार्य कुशलता, नियमशीलता, दृढ़ता, संयमित जीवन, व्यवहार कुशलता, विवेक और वैराग्य का मिलने वाले के मन पर एक अद्‌भुत प्रभाव पड़ता था। जितना उनके समीप हो उतनी ही उन पर अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ती थी।

पाकिस्तान बनने के पश्चात् सभा ने कुरुक्षेत्र में एक प्रचार कैम्प खोला, जिसमें नित्यप्रति यज्ञ वा प्रचार का कार्य होता था, यह कार्य सभा ने मुझे सौंप रखा था। एक बार सहसा स्वामी जी महाराज उस कैम्प में पधारे, प्रचार के पश्चात् सायकाल भ्रमण के लिये निकले, भ्रमण करते हुए मैने उनसे पूछ लिया। स्वामी जी महाराज कई वार चतुर, होशियार और बेईमान लोग ऐसा जाल बिछाते हैं कि बड़े बड़े लोग उनकी मुट्‌ठी में आ जाते हैं। और कार्यक्षेत्र में वह इतने सफल होते हैं कि भले लोग उनका मुख ताकते रह जाते हैं। यह बात समझ में नहीं आती ?

स्वामी जी का सीधा और सरल उत्तर था। देखो बाबू यह ठीक है कि भले लोगों की अपेक्षा बुरे और बेईमान लोग कई वार शीघ्र सफल होते और वैभवशाली बनते दिखाई देते हैं परन्तु लम्बी दौड़ में जीत उन्हीं की होती है जो सच्चे और अच्छे होते हैं। बुरे

और बहुरुपिये लोग इस दौड़ में प्रायः पिछड़ जाते हैं, और अन्त में दुःख उठाते हैं। इस बात का मेरे मन पर आज तक प्रभाव है।

स्वामी जी वेद, दर्शन, सिद्धान्त, आयुर्वेद, यूनानी हिकमत, भूगोल, इतिहास, गणित आदि सब विषयों में कमाल की योग्यता रखते थे। और प्रत्येक विषय को इतनी सरलता से समझा देते थे कि मनुष्य आश्चर्यचकित रह जाता था।

उनकी स्मृति इतनी तीव्र थी कि बिना किसी डायरी के उन्हें सब कुछ स्मरण रहता था पाकिस्तान बनने के पश्चात् मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से लुधियाना जिला प्रचार के लिये मिला। मैं श्री स्वामी जी से मिला और प्रचार के लिये उपाय पूछे। उन्होंने मौखिक रूप से ही मुझे सब ग्रामों और कसबों के नाम तथा उनमें बसने वाले सब प्रमुख आर्यसमाजियों के नाम लिखा दिये, जिससे प्रचार कार्य में मुझे विशेष सफलता मिली और सब कार्य सुविधा-पूर्वक हो गया।

स्वामी जी इतने कार्यकुशल एवं व्यवहार कुशल थे कि उनके निरीक्षण में सब कार्य अपने आप ही होते जाते थे वह किसी से यह नहीं कहते थे कि यह करो, वह करो, ऐसा करो, वैसा करो, अपितु जिस कार्य को करना होता था वह स्वयं उसमें जुट जाते थे। उन्हें कार्य में लगे देख दूसरे लोग भी स्वयं आकर उनके साथ कार्य में सम्मिलित हो जाते थे। और कार्य तत्काल सम्पन्न हो जाता था, मैंने कई बार उन्हें घास खोदते तथा नालियों को साफ करते देखा है।

उनके जीवन के अन्तिम दिनों की बात है, जब वह नई दिल्ली में रुग्णावस्था में श्री लाला नारायणदत्तजी ठेकेदार की कोठीपर ठहरे हुए थे, रोग का पता लगने पर मैं उनसे मिलने के लिये गया, काफी समय तक मैं उनकी सेवा में रहा। इसी बीच बातचीत करते मैंने

उनने पूछ लिया, कि स्वामी जी ? हदीसों में लिखा है कि ज्यों ज्यों आदमी बूढ़ा होता जाता है त्यों त्यों उसकी दो इच्छायें बढ़ती जाती हैं, एक तो धन की इच्छा, दूसरे जीने की इच्छा, क्या यह बात ठीक है। सहज स्वभाव से बोले कि हमें तो न धन की लालसा है न जीने की।

कहां तक लिखें वह एक सच्चे सन्त थे, कुशल सेनानी थे। सच्चे समाजसुधारक और अद्वितीय नेता थे। वह हर बात में लासानी थे और उनकी हर बात बेजोड़ होती थी।

उनका सारा जीवन वेदप्रचार, देशोद्धार और मानवजाति की सेवा में बीता। हैदराबाद सत्याग्रह का कुशलतापूर्वक संचालन, और लोहारू में धर्मप्रचार के लिये हंसते हंसते शरीर पर लाठी प्रहार सहन किसको स्मरण नहीं। उनका सारा जीवन बलिदानी जीवन था और अन्त में भी वह धर्म, जाति देश के लिये अपना बलिदान दे गये। वह ज्योति स्तम्भ थे और आज भी उनका जीवन मानवमात्र को ज्योति प्रदान करने वाला है। किसी ने ठीक कहा है कि—

नज़र को रोशनी दें जो, वह जलवे और होते हैं।
जिन्हें आता है जल मरना, पतंगे और होते हैं॥ ●

स्वामी जी महाराज का अद्भुत व्यक्तित्व

(श्री ब्र० सत्यव्रत जी "बसु")

दयानन्द मठ दीनानगर (गुरदासपुर) १९ दिसम्बर १९७२ की बात है ११ मार्च १९५४ के लगभग सवा आठ बजे की। दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर यात्रियों की गहमा गहमी और भीड़

भड़क्के के बीच, एक दर्शनीय, विशालकाय, श्याम वर्ण, ऊँचा कद, लम्बी नाक, सम्पुट, दृढ़ता सूचक होंठ, बड़ी बड़ी पानीदार आंखें, तमतमाता हुवा भव्य भाल, जिस पर बीचों बीच सिर की ओर ऊपर को उठती हुई किसी चोट के निशान की रेखा जो प्राकृतिक राज्याभिषेक रेखा सी प्रतीत हो रही थी (जो बाद में पता चला लुहारू सत्याग्रह में नवाब के गुण्डों द्वारा मारे गये कुल्हाड़े के घाव का निशान था) किञ्चित लालिमा लिए काषाय वस्त्र, कन्धों पर दोनों ओर झूलता सा दुपट्टा, चमरौधा देसी जूता, बाएं हाथ में कमण्डलु और दायें कन्धे पर छोटा सा थैला लटकाए, वीरता के मूर्तिमान स्वरूप, गम्भीरता के साक्षात् सागर से, जिनके ब्रह्मचर्य के तेज से तप्त ताम्रवत् तमतमाते हुवे देदीप्यमान मुख मण्डल को बसन्त के प्रात:कालीन बाल रवि की किरणें और भी भास्वान बना रहीं थीं ऐसे महामानव को मैं ने अपने से कुछ कदम को दूरी पर, अपनी ही मस्ती में लीन, छोटे छोटे कदम रखते हुवे प्लेट फार्म पर टहलते देखा।

मैं ने अपने जीवन में ऐसे भव्य संन्यासी को पहली बार देखा था। एक बार जो देखा तो इक टक देखता ही रह गया। सहसा हृदय में एक भाव उमड़ा, और आगे बढ़ के उनके चरणों में अपना माथा टेक दिया। ऐसा करने पर उन्होंने मुझे प्यार से उठाते हुये कहा उठो भाई उठो; उनकी मधुर वर्षिणी वाणी और स्नेह सिक्त हाथों का स्पर्श पाकर मुझे सान्त्वना तो बहुत मिली पर न जाने क्यों? उनके व्यवहार और भाव भङ्गिमा में अपार स्नेह का सागर सा लहराता देख, मेरी आंखे डबडबा आईं। उन्होंने निकट के बैञ्च पर बैठते हुवे, बड़े स्नेह से मुझे पूछा क्यों भाई क्या बात है? भला जवान आदमी भी कहीं ऐसे रोते हैं क्या? और मुस्कराते हुवे मुझे अपनी बात कहने को प्रोत्साहन सा देने लगे।

मैं ने निवेदन किया महाराज। हमारे गांव के निकट आज से—

तीन वर्ष पहले एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुवा था। वहां आर्यसमाज के तीन चार युवक ब्रह्मचारी आये थे। जो बड़ी धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे। तब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उन्हीं से प्रेरणा पाकर, संस्कृत पढ़कर ब्रह्मचारी रहने का सङ्कल्प लिया था, कई बार घर से भागा पर कहीं स्थान न मिला, अब दसवीं की परीक्षा के बाद घर वालों से जैसे तैसे अनुमति मिलने पर दिल्ली चला आया, एक पाठशाला में पढ़ने लगा। पर आज सवेरे जब उन्हें यह पता चला कि मैं ब्राह्मण कुलोत्पन्न नहीं हूँ, तो मुझे यह कह कर पाठशाला से निकाल दिया कि यह पाठशाला तो केवल ब्राह्मणों के के लिए है। हम तो शक्ल सूरत और आचरण से तुम्हें ब्राह्मण समझते थे इसीलिए अब तक तुम्हें पढ़ाते रहे। यह सुन कर मुनिवर ने एक लम्बी सांस ली, और मेरी ओर बड़ी मर्म भेदिनी दृष्टि से देखते हुवे बोले "भिक्षा मांगकर पढ़ सकोगे"? मेरे स्वीकृति सूचक सिर हिलाने पर, उन्होंने अपने थैले से एक कागज लिया और वह पत्र, पण्डित रामचन्द्र जी वैद्य सिद्धान्त शिरोमणि (अब श्रद्धेय स्वामी सर्वानन्द जी) दयानन्द मठ दीनानगर के नाम लिख कर मुझे दे दिया, और बोले "जाओ जितना मर्जी पढ़ो"

मैं मुंह मांगी मुराद का वरदान सा पाकर, उस कागज के टुकड़े को भिक्षुक के मुष्टि चणक की तरह अपनी छाती से लगाये जब दीनानगर की ओर आ रहा था तो सोच रहा था कैसे अद्भुत महात्मा थे? न नाम पूछा न धाम, जाति देखी न विरादरी, कितना प्यार कितना अपनत्व, कितनी महत्ता, लेकिन शङ्कित था शायद आगे वाले न माने तो? परन्तु जब दयानन्द मठ के दिव्य द्वार की पैड़ियों से उतर कर, दोनों ओर महकते हुवे गुलाब के खिलखिलाते हुवे, भारी भारी फूलों के मकरंद से सुरभित सड़क के ठीक सामने, विशाल, गगनचुम्बी, यज्ञशाला के निकट, नव बोर मञ्जरित, किशोर आम्र की छाया में गोलियां बनाते हुवे, श्वेत परिधान में

एक गौर वर्ण, तरुण तपस्वी को छात्र समुदाय से घिरे बैठे पाया, तो सहसा माथा श्रद्धा से उनके चरणों में झुक गया। और यही श्रद्धेय पण्डित जी—होंगे ऐसा मन में अन्दाजा करते हुवे वह पत्र उनके हाथ में दे दिया। पत्र देखकर अच्छा !! स्वामी जी का पत्र है? कहां मिले थे तुम्हें? मेरे सब बातें बताने पर पास बैठे एक छात्र को निर्देश देकर मेरा सामान कमरा नम्बर २ में रखवा दिया। दो दिन बाद जब वह महापुरुष मठ में पधारे तो पता चला। यही महामहिम, हैदराबाद सत्याग्रह विजेता, स्वनामधन्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज हैं। चन्द रोज में ही मेरी गति विधि देख कर श्रद्धेय पण्डित जी ने, स्वामी जी की कुटिया साफ करने, और जब भी वह मठ में होते, सवेरे का नाश्ता और शाम का भोजन कराने की सेवा का सौभाग्य मुझे प्रदान किया।

मैं नित्यप्रति कुटिया साफ करने प्रायः उस समय जाता जब महाराज जी स्नान करने जा रहे होते। हम प्राज्ञ कक्षा के विद्यार्थी तर्क संग्रह श्रद्धेय स्वामी जी के श्रीमुख से ही पढ़ा करते। प्रायः उनके स्नान करके लौटने पर ही मैं कुटिया से आया करता, तो वह कभी कभी तर्क संग्रह के पढ़ाये हुये स्थल भी पूछ लिया करते इसी डर से मैं अपना पाठ खूब मेहनत से तैय्यार रखता था।

"एक दिन की बात"

ज्ञान वर्धन में देशाटन का कितना महत्व है, यह स्वामी जी के जीवन में पदे पदे मिलता था। सच्चे परिव्राट् के नाते स्वामी जी ने पूरे भारत का कई बार आर पार किया था, प्रान्त की तो बात छोड़, उन्हें आञ्चलिक लोकोक्तियों और रीति रिवाजों का भी वहां के रहने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान था।

एक दिन रोहतक जिले के गांवों से कई सज्जन आये हुये थे। उन्होंने वहां के अनेकों समाचार सुनाते हुये अपने एक साथी के तोड़ फोड़ और लड़ाई झगड़े की भी कुछ बातें सुनाई तो हंस कर बोले

यह कोई नई बात थोड़े है रोहतक वालों के लिये।

"सौ कौतकी और एक रोहतकी बराबर होता है" और यह कहते हुये सभी को हंसते हुवे स्वयं भी बड़े जोर से हंसने लगे। श्रद्धेय स्वामी जी का हंसने का ढङ्ग भी क्या खूब था जब हंसते थे तो खूब जोर से, बिल्कुल खुली, बेबाक और निश्छल हंसी।

एक सज्जन रोहतक वालों के साथ डाबर प्रदेश के रहने वाले भी थे जो रोहतक वालों को कनखियों से देखते हुवे आवश्यकता से अधिक हंस रहे थे। क्योंकि रोहतक वाले तो स्वामी जी को केवल बस अपना ही स्वामी मानते थे न, अतः बोले, "महाराज जी डाबर के हम तैं घाट सैं"

महाराज जी भी रोहतक वालों को दबता सा देख कर बोले।

"डाबर देश कठोर घणा, काण्टा मच्छर चोर घणा॥

यह सुन कर डाबर वाले महाशय तो दम साध गये, क्योंकि हंसने की बारी अब रोहतक वालों की थी।

इसी प्रकार हंसते हंसाते शङ्का समाधान करते कराते मैं श्री स्वामी जी के चरणों में नित्य नये लोगों को आते देखता था।

एक दिन हम सभी विद्यार्थी उनके चरणों में बैठे थे कि किसी तरह रेवाड़ी का जिकर आगया, मुझे स्वामी जी प्यार में चौधरी कह कर पुकारा करते, बोले क्यों चौधरी! तू रेवाड़ी का है बता रेवाड़ी का क्या मशहूर है? मैं तीसरी श्रेणी के भूगोल से रटे हुवे कांसी पीतल के बर्तन, राजा तेजसिंह का तालाब, राणी की ड्योढ़ी आदि सुनाने लगा तो बोले "ये तो हुवा पर विशेष क्या?" मैं उनके श्री मुख की ओर देख ही रहा था कि वह सहज भाव से गाते हुवे कहनें लगे,

"चार ची अस्तोफाए रेवाड़ी
अहीर, फ्रांस, जौ पानी खारी"

मेरे सब साथी खिलखिलाकर हंस पड़े। मैं अपने को खारी पानी का होने मे बचाते हुवे सफाई देते हुवे कहने लगा, मैं तो राजस्थान का हूं जी! "बोलो अच्छा"! तेरा गांव कहां है? मैंने कहा पहले जयपुर में था अब राजस्थान बनने से अलवर में आगया है। तो घटनाओं के तो वह सागर थे, एक घटना सुनाते हुए कहने लगे "तूम्हारे वहां के राजा ने अपनी लड़की जोधपुर नरेश को परना दी एक दिन राजा उस राजकुमारी को लेकर जाधपुर के मरु प्रदेशा के गांव दिखाने ले गये। दिन भर रथ में घूम कर लौटे तो राजा ने पूछा कहो देवी तुम्हें कैसा लगा हमारा मारवाड़! रानो विचारी तो थकी थकाई थी, ऊपर से राजा मरु प्रदेश की व्याख्या चाह रहे थे, बोली। आकां रा झौंपड़ा, फोगां री बाढ़।
बाजरा रा रोटला मौठांरी दाल॥
खेतां मां खेजड़ी, ऊँटारी लार। (शमी वृक्ष जाण्डी)
देख्यो हो राजा थांको मरवाड़॥

यह सुन कर मैं राजस्थानी तो अपनी झैंप मिटाता भाग खड़ा, हुवा पर सहाध्यायी गण बाजरा र रोटला मौठांरी दाल कह कर मुझे कई दिन चिढ़ाते रहे।

कहां तक सुनाएँ आपको उस महा पुरुष की गुण गरिमा। कथा की व्यास वेदी पर बैठते तो वह वेद वेदाङ्गादि के वह मूर्धन्य मनीषी थे। शास्त्रार्थ समर में ऋषि निष्ठा के दीप्तिमान स्तम्भ थे। राजनीति के बृहस्पति सदृश नीति निर्धारक थे। सत्याग्रह सङ्गर के वह विजयी फील्डमार्शल थे। आचार धर्म को ज़ीवन में आत्म सात् किये शिष्यों के जीवन को आलोकित करने वाले कीर्तिमान्

आचार्य थे। गत यौवन होने पर भी युवक हृदय सम्राट् थे। जिज्ञासु जगत् के पथ प्रदर्शन के लिए आप का जीवन खुली किताब था कपट मुनियों के लिए वह जटिल पहेली थे।

आज भी जब आर्यसमाज किसी बुराई को मिटाने के लिए हुंकारा भरता है तो बरबस उनका युग याद आने लगता है। और जब भी आर्यो को कहीं हेठी का मुंह देखना पड़ता है तो समस्त आर्य जगत् एक दर्द भरी टीस से कराहता हुवा सा कह उठता है काश ! आज वे होते।●

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

(श्री प० समरसिंह वेदालङ्कार, अध्यक्ष हरयाणा वेद प्रचार मण्डल, जीन्द)

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की विशुद्ध वैदिक-सिद्धांतों में कितनी अगाध श्रद्धा थी, इसका प्रमाण उनके जीवन की एक विशेष घटना से मिलता है।

सन् १९४१ में कार्तिक पूर्णिमा के पुण्य पर्व पर गढ़ मुक्तेश्वर के प्रसिद्ध मेले का समारोह था। उस अवसर पर हरयाणा तथा उत्तर-प्रदेश के किसान श्रमिक सगठन की ओर से एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उस संगठन के निर्माताओं में चौधरी हरिराम जी एडवोकेट रोहतक निवासी मुख्य थे। जब इस किसान श्रमिक सम्मेलन के प्रधान पद की अध्यक्षता का प्रश्न उपस्थित हुआ तो अनायास ही सबका ध्यान उस समय के जन-दिग्दर्शक महापुरुष

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की ओर आकर्षित हुआ। श्री स्वामी जी उन दिनों हैदराबाद आर्यसत्याग्रह रूप महासंग्राम के सूत्र धार रह चुके थे। श्री स्वामी जी ने देखा कि नवाब का दम तोड़ने में हरयाणा के आर्य वीरों का मुख्य हाथ है।

श्री स्वामी जी की दूरदर्शिता तथा प्रसिद्धि को ध्यान में रखते हुए किसान श्रमिक संगठन के कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन का अध्यक्ष सर्वसम्मति से श्री स्वामी जी महाराज को चुन लिया। मेले में अध्यक्ष का जुलूस (शोभा यात्रा) निकालने के लिए सजा सजाया हाथी मंगवाया गया। श्री स्वामी जी को उस पर चढ़ाया गया। जब जुलूस चलने को उद्यत हुआ तो सम्मेलन के अधिकारियों ने किसान श्रमिक संगठन वा दल का प्रतीक पताका या झण्डा श्री स्वामी जी के हाथ में थमाने का सकेत किया, जिस पर हल और तलवार का चिह्न अंकित था। श्री स्वामी जी ने ऊपर को देखा और झण्डा लेने से साफ इन्कार कर दिया कि मैं तो केवल एक मात्र ओ३म् के झण्डे का अनुयायी हूं। जो सार्वभौम सत्य का प्रतीक है। वेद और ईश्वर का सही सन्देश देने वाला है। जो दलबन्दी की दलदल से बहुत ऊंचे है जिस पर राजनीतिक मतभेदों का कोई प्रभाव नहीं। न सम्प्रदायिकता का कोई रंग चढ़ता है, न जाति-पांति की तंग दीवारें ही कोई वाधा डालती हैं। जहां मैं आर्य हूँ वहां सन्यासी के नाते विशेष-रूप से सार्वभौम सत्य का पुजारी हूँ।" स्वामी जी के ये ऊंचे विचार सुन कर सम्मेलन के अधिकारी दंग रह गये कि यह महात्मा ओ३म् के झण्डे को किसी तरह भी तिलाञ्जलि देने को तैयार नहीं है तो उन्होंने विचार विमर्श के पश्चात् दूसरा विकल्प यह प्रस्तुत किया कि महाराज ! आप ओ३म् का झण्डा अवश्य ले लें (जो मंगवाया गया)। परन्तु साथ में उससे कुछ छोटा झण्डा किसान श्रमिक दल का भी ले लें। पूज्य स्वामी जी ने यह सुझाव भी ठुकरा दिया कि

हाथी के पांव में सबके पांव आ जाते हैं। ओ३म् की उपस्थिति में हल और तलवार की धार के साथ प्रेम की धारा भी बहती है। मेरे अन्तरात्मा या अन्तःकरण में ओं पताका के सिवाय दूसरे प्रतीक समाते ही नहीं, यह सुन कर सम्मेलन के अधिकारी आश्चर्य-चकित रह गये कि यह महात्मा कैसी विचित्र खोपड़ी का मालिक है। हम इनका इतना मान करते हैं। अध्यक्ष पद का ऊँचे से ऊँचा स्थान देते हैं वे हमारी छोटी सी प्रार्थना भी मानने को तैय्यार नहीं। वे रोष में भर गये और बौखला उठे कि ऐसी अध्यक्षता का क्या अर्थ है। कहने लगे स्वामी जी जुलूस आप का साथ न देगा। स्वामी जी ने सादे स्वभाव से उत्तर दिया कि आप लोग साथ चलें न चलें, ओ३म् का भण्डा तो मेरे साथ अवश्य रहेगा। क्रुद्ध होकर सम्मेलन के अधिकारियों ने जुलूस का रुख मोड़ दिया। हाथी समेत स्वामी जी को अकेले छोड़ने का प्रयास किया। एक बार बाजे समेत जुलूस एक ओर को आगे बढ़ा। कुछ गिने-चुने कट्टर आर्यसमाजी सज्जन ही श्री स्वामी जी के साथ वा पीछे रह गये जिनमें से श्री स्वामी जी को अकेले छोड़ कर जयकार लगाता हुआ जुलूस बराबर से आगे बढ़ रहा था। इधर एक बड़े महात्मा का अपमान होते देख कर साधु सम्प्रदाय में खलबली मच गई। कोई कहता जमीन हिल जायगी। आसमान फट जायगा, गंगा उफन पड़ेगी ऐसे महात्मा का अपमान भगवान् सहन न करेंगे। चारों ओर से साधुओं की भीड़ जमा होने लगी। कोई रणसिंगा बजा रहा था तो कोई लम्बी तुरही फूंक रहा था। कई घंटे घड़ियाल ही उठा लाए साथ ही शंखों की तू तू पी पी ने भीड़ जमा कर दी देखते देखते स्वामी जी महाराज का जुलूस जोर पकड़ने लगा और सम्मेलन वालों के जुलूस से जनता खिसकने लगी। कुछ दूर चल कर धीरे से किसानों का जुलूस समाप्त हो गया, समग्र जनता स्वामी जी के साथ जयघोष करती हुई चलने लगी। सम्मेलन वालों ने हार मान कर स्वामी जी को पुनः अपना लिया। "सत्यमेव जयते नानृतम्" चरितार्थ हो गया।

एक भीमकाय व्यक्तित्व

(लेखक—प्राध्यापक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम. ए.बी. टी.,
दयानन्द कालिज, अबोहर)

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के विषय में क्या लिखू ? वह एक व्यक्ति नही अपने आप में एक संस्था थे। वह अनेक सभा संस्थाओं के जनक, पालक पोषक व स्तम्भ थे वह मनीषी, गुणी, मुनि, अन्वेषक, गवेषक, साधु, सेनानी, तपस्वी, मनस्वी, नेता,विजेता, दार्शनिक, वेदज्ञ, इतिहासज्ञ, राजनीतिज्ञ, सुवैद्य, ब्रह्मचारी, सुधारक, विचारक, दूरदर्शी विभूति थे। मैं उनके किस रूप के विषय में लिखू ?

दो दशाब्दिया उनके निर्वाण को हो गई। सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में कई नेताओ के चित्र है स्वामी जी का नही। हैदराबाद सभा के कार्यालय में भी कई सुन्दर चित्र है परन्तु 'स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का चित्र नही। आर्यसमाज में ही जब उस महामुनि का ठीक मूल्याङ्कन नही हो पा रहा तो बाहर के लोग क्या महत्त्व दें ? मैं तो उनके निधन के समय से ही उनके जीवन पर अनुसन्धान कर रहा हूं। समय आएगा और [अवश्य आएगा जब इतिहास के पृष्ठ 'उस पावन चरित्र की गौरव गाथा उच्च स्वर से गायेगे। लीजिए सप्रमाण उनके व्यक्तित्व का अध्ययन कीजिए। —

(१) क्या आप जानने हैं कि मारीशस का राजनीतिक महत्त्व, सामरिक महत्त्व समझने वाले सबसे पहले भारतीय नेता स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज थे ?

(२) क्या आप जानते हैं कि मारीशस का सप्रमाण इतिहास व भूगोल लिखने वाले सर्वप्रथम भारतीय गवेषक स्वामी जी ही थे ?

(३) क्या आप जानते हैं कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सत्याग्रहियों से युद्ध बन्दियों [p. o. w.] जैसे व्यवहार करने की

मांग करने वाले सर्वप्रथम राष्ट्रिय नेता स्वामी जी ही थे ? [द्रष्टव्य वीर संन्यासी प्रश्न ३ से ६ के लिए ।]

(४) क्या आप जानते हैं कि अंग्रेज स्वामी जी की इसी मांग से खीज उठा और तत्क्षण महाराज को कारागार भेज दिया गया।

(५) क्या आप जानते हैं कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में दूसरे महायुद्ध के दिनों में स्वामी जी पर हरयानवी सैनिकों के माध्यम से सेना में विद्रोह फैलाने का भी आरोप लगाया गया ? स्वामी जी ने तब हरयाणा की जो यात्रा की थी, श्री सिद्धान्ती जी व पूज्य स्वामी ओमानन्द जी आदि उनके कुछ विशेष भक्त बारी बारी उनके साथ रहे।

(६) क्या आप जानते हैं कि देश एवं विदेश में राष्ट्रभाषा के सर्वाधिक प्रचारक प्रसारक पूज्य स्वामी जी ने ही दिये। दक्षिण भारत में आंध्र,. मद्रास, केरल, मैसूर तथा अफ्रीका में जिन लोगों ने राष्ट्रभाषा के प्रचार की अलख जगाई उसमें अधिकतम संख्या स्वामी जी के शिष्यों की ही है।

(७) क्या आप जानते हैं कि मारीशस में हिन्दी को शिक्षा संस्थाओं व राजकाज में तथा दैनिक जीवन में स्थान दिलाने का आंदोलन स्वामी जी ने ही आरम्भ किया।

(८) क्या आपको पता है कि हरयाणा के गले से गुरुमुखी की अनिवार्यता के विरुद्ध हस्ताक्षर अभियान पूज्य स्वामी जी की प्रेरणा से ही आरम्भ हुआ था ?

(९) क्या आपको पता है कि स्वामी जी ने आर्यसमाज को सर्वाधिक साधु व उपदेशक दिये ?

द्रष्टव्य वीर सन्यासी

(१०) क्या आपको पता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में

न्यायायय के अपमान (contemp of court) के प्रथम सत्याग्रही अभियोगी हरयाना प्रदेश के स्वाधीनता सैनिक श्री पं० मनसाराम जी वैदिक तोप को सार्वजनिक जीवन के विशाल क्षेत्र में लाने वाले एवं अद्वितीय शास्त्रार्थी बनाने वाले स्वामी जी महाराज ही थे ?

द्रष्टव्य एक मनस्वी जीवंन

ये थे कुछ तथ्य जो प्रश्न रूप में आपके सामने मैंने रंखे। अब स्वामी जी के ये शब्द पढ़ें:—

"यदि भारत ने मारीशस के साथ अधिक सम्बंध न रखा तो उससे ऐसी हानि होगी जिसका बाद में पूरा करना कठिन हो जाएगा। सम्बंध स्थापित करने के लिये सबसे पूर्व जहाजों की आवश्यकता है जो सीधे कलकत्ता बम्बई मद्रास से मारीशस आएं। आप सोचें बम्बई से पोर्ट लुइस ४५३२ को दूरी पर है और मम्बासा २७२१ मील दूर है। मारीशस आने वाले अथवा मारीशस से भारत जाने वाले मम्बासा के मार्ग से जाएं तो उनका कितना व्यय बढ़ जाएगा।" [स्वामी जी की विदेश यात्रा वालो पुस्तक पृष्ठ ३६—३७]

"सन् १८१० से मारीशस पर अंग्रेजो झंडा लहरा रहा है और यह बात याद रखने योग्य है कि भारत की रक्षा के लिए ही मारीशस पर अधिकार किया गया था। [स्वामो जो की विदेश यात्रा वाली पुस्तक पृष्ठ ४४]

"अतः संसार में जहां भारतीय बस गये हैं उन्हें हिन्दी सिखाने के लिए सरकार को योग्य अध्यापक भेजने चाहिएं। उनके साथ हिन्दी साहित्य की अच्छी अच्छी पुस्तकें भी भेजनी चाहिएं। साथ ही हिन्दी स्कूल खुलवाने एवं हिन्दी को समुचित मान्यता दिलाने का प्रबंध भी करना चाहिए।" [स्वामी जी की विदेश यात्रा वाली पुस्तक पृष्ठ ६०]

सुविज्ञ पाठक आज जानते हैं कि हिन्द महासागर में अपना अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विश्व की बड़ी बड़ी शक्तियों में संघर्ष चल रहा है। यदि भारत ने अपने परमहंस राजर्षि की चेतावनी सुनी होती तो आज हमें किसी का भी भय न होता। मारीशस से हमारा सम्बंध हमारी सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। राजर्षि स्वतन्त्रानन्द की सूक्ष्म दृष्टि, दिव्य दृष्टि देखें कहां गई। जब भारतीय नेता सो रहे थे उसने तब जहाजों की आवश्यकता, हमें बताई परन्तु किसी ने तब न सुनी। ●

दो विशेष घटनाएँ

(श्री बोधेन्द्रदेव आयुर्वेदाचार्य—आचार्य गुरुकुल कादीखेड़ा,
जि० मुजफ्फरनगर)

बात सन् १९४९ फरवरी मास की है। पूजनीय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज हमारे निमन्त्रण पर रेवाड़ी पधारे। उन दिनों ग्रामीण आर्यसमाजों के आर्य भाइयों का संघटित करने का विचार चल रहा था। रेवाड़ी के आसपास के कुछ आर्यसमाजें आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से और कुछ आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान से सम्बद्ध हैं। किन्तु भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से उन सबका रेवाड़ी से घनिष्ट सम्बन्ध है।

अतः सोचा यह गया कि आर्यसमाज के विधान के अन्तर्गत इन सबका एक संघटन भी हो, जो समय समय पर इलाके में वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये योजनायें बनाकर कार्य में अग्रसर हुआ करे। इलाके के सब आर्य महानुभावों की सम्मति से

निश्चय किया गया, कि इस संघटन का नाम "आर्य भ्रातृ मण्डल" रक्खा जाय और आर्यजगत् के किसी प्रसिद्ध नेता से इसका कार्यारम्भोद्घाटन कराया जाय।

श्रद्धेय स्वामी जी महाराज से प्रार्थना की गई, तथा उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। मण्डल के सम्मेलन का समय निश्चित था, और वक्ता, प्रस्तावक, एवं संशोधन प्रस्तुत करने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी। स्वामी जी महाराज सभापति थे, उन्होंने यथा सम्भव सभी बोलने वालों को समय दिया। निश्चित समय में केवल पांच मिनट शेष रह गये। मैंने मन्त्री के नाते उपस्थित सभी सज्जनों से अपील की, कि स्वामी जी महाराज के उपदेश के लिये न्यूनातिन्यून १ घण्टा समय अवश्य चाहिये। इस पर सबने मौन स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

पुनः स्वामी जी महाराज से करबद्ध प्रार्थना की, कि आप हम सबको उपदेश, आदेश और "आर्य भ्रातृ मण्डल" को आशीर्वाद दीजिये। जिससे यह अपनी उद्देश्यपूर्त्ति में सोत्साह संलग्न रहे।

स्वामी जी ने कहना आरम्भ किया, प्रिय आर्यो! पञ्जाब में दुवाबा का इलाका है, वहां चोर बहुत रहते थे। रात्रि में मण्डियों को सामान ले जाने वालों को गाड़ियों से सामान और बैलों को चुरा लिया करते थे। उनकी चोरी का ढंग भी अनोखा था।

जब किसी का बैल चुराना होता तो एक चोर जूवे में जुत जाता, और दूसरे चोर बैल को निकाल लेते, कुछ दूर चलकर वह जूवे में जुता हुआ चोर भी गाड़ी को छोड़कर भाग जाता। ये चोरियां रात्रि में प्रायः गड़वालों (गाड़ीवानों) के सो जाने पर हुआ करतीं थीं।

एक रात को पिता पुत्र गाड़ी लिये जा रहे थे, रास्ते की ठण्डी हवा और शयन का समय होने के कारण उन दोनों को ही नींद आ

गई, चोरों ने अपने अभ्यस्त ढंग से बैल को चुरा लिया। परन्तु इस बार जो चोर जूवे में जुता था, उसके दाढ़ी थी। चोरी के तुरन्त बाद बेटे की आंखें खुल गई, और उसने कहा पिताजी एक बैल चुरा लिया गया है। चलती गाड़ी देखकर बूढ़े बाप को सहसा विश्वास नहीं हुआ, और उसने बैलों की ओर देखा।

देखता क्या है! कि एक बैल की जगह एक दाढ़ीवान् जुता हुआ है। उसने कहा बेटे घबरा मत, दाढ़ी वाले के कन्धे पर जूवा है, कहीं ठिकाने पर ही लगायेगा। इतना सुनना था कि दाढ़ी वाले चोर ने अपने साथी चोरों को पुकारा, और बैल को वापिस कर दिया। यह कहकर स्वामी जी ने कहा आर्यो, मुझे तुम पर पूर्ण आशा और विश्वास है, कि तुम इस वैदिकधर्म के जूवे (दायित्व) को जो तुम्हारे कन्धों पर है, वहन करते हुए अपने उद्देश्य को पूरा करोगे। यही मेरा उपदेश वा आदेश और आशीर्वाद है। और हम सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, कि उन्होंने अपने कथन को पाँच मिनट में ही समाप्त करके सभा विसर्जित कर दी। आज भी रेवाड़ी के समीपस्थ आर्यों में यह वार्ता प्रचलित है, कि "दाढ़ी वाले के कन्धे पर जूवा है कहीं ठिकाने हो लगायेगा। परन्तु हम सब पर जो गहरा प्रभाव पड़ा वह समय पर भाषण की समाप्ति का था।

समय पर भोजन

उस समय स्वामी जी कई दिन तक रेवाड़ी में ठहरे थे और स्कूल कालिजादि में उनके कई भाषण हुए थे। एक दिन भाषणों में समय बहुत लग गया और १२ से ऊपर बज गये। भोजन के लिये प्रार्थना करने पर उत्तर मिला, हम तो दिन के बारह बजे से पहले पहले भोजन करते हैं, विलम्ब हो जाने पर दूसरे दिन ही नियमानुसार भोजन करते हैं। और उस दिन उन्होंने भोजन नहीं किया।

रुग्णावस्था में दिल्ली भेंट

(श्री लालमणि आर्य टटेसर दिल्ली)

जिस समय स्वामो स्वतन्त्रानन्द जी लाला नारायणदत्त जी आर्य बारहखम्बा रोड नई दिल्ली की कोठी पर रोगी पड़े थे। मैं अपने साथी मास्टर राजेराम जी वैद्य सनोठ के साथ मिलने गया तो वैद्य जी ने उनकी दशा देखकर स्वामी जी से पूछा "छाछ जो दिन-भर पीते हैं। क्या आपका शरीर मांगता है" उत्तर "नहीं" "फिर क्यों पीते हो" उत्तर "जो मेरा उपचार कर रहे हैं उनके कहने से" उस रोग में स्वामीजी के प्राण गये परन्तु सलाहकारों की सलाह पर अडिग रहे। ●

पूज्य चरण श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की याद

(ले० पं० कपिलदेव जी शास्त्री रोहतक)

कभी कभी जीवन में ऐसी घड़ी आती है कि—चाहे कितनी ही कड़वी बात हो वह कह देनी चाहिये। आर्यसमाज के धनी धोरियों ने अपने महान पुरुषों की स्मृति रक्षा के लिये उनकी याद में कुछ न कुछ किया ही है केवल मात्र श्रद्धेय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ही ऐसे हैं, जिनकी याद में आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया। न उनका आज तक ठीक ढंग का कोई जीवन चरित्र छपा है, न ही उनका कोई अन्य ढंग का स्मारक बन पाया है।

उनकी स्मृति रक्षा के लिये जो प्रयत्न होने चाहिये थे—वे न के बराबर हैं। उनके दो बड़े स्मारक हैं। एक है दीनानगर का दयानन्द

मठ। जो पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की देख रेख में बड़े अच्छे तरीके से चल रहा है। दूसरा है—दयानन्द मठ रोहतक। कहने को वहां बहुत कुछ है। पर है कुछ नहीं। पहले श्री स्वामी-सुरेन्द्रानन्द जी, और अब श्री स्वामी सोमानन्द जी तथा ब्रह्मचारी कृष्ण से जो सेवा बन पड़ती है कर रहे हैं। वानप्रस्थी रामपत जी साल भर ऋषिलंगर चलने लायक अन्न एकत्र कर देते हैं, जिससे ऋषिलंगर वर्ष पर्यन्त चलता रहता है। वहां बहुत कुछ किया जा सकता है।

पहले पहल पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन गुरुकुल भैंसवाल के उत्सव पर किये थे। उस समय मैं १५ वर्ष का था। तथा गुरुकुल में सातवीं श्रेणी में पढ़ता था। श्री स्वामी जी की सेवा का कार्य मेरे जिम्मे था। अनेक वार देखने का अवसर मिला। जितना ही उनके निकट रहने का अवसर मिलता था—उतनी ही श्रद्धा बढ़ती थी। उनके निकट रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति—यही समझता था कि वे उससे ही सबसे अधिक प्रेम करते हैं। उनका व्यवहार ही इतना ममता मय था।

हैदराबाद सत्याग्रह के समय १९३९ में दो महीने का कारावास की सजा काट कर मैं निजामावाद से मनमाड़ पहुंचा। उन्होंने आज्ञा दी कि—जब तक सत्याग्रह समाप्त नहीं होता यहीं मनमाड़ कैम्प में रह कर सत्याग्रह के लिये जाने वाले और जेल से वापिस आने वाले सत्याग्रहियों के सेवा करनी है। इस प्रकार चार पांच महीने निरन्तर उनकी आज्ञाओं का पालन करने का अवसर मिला। उन दिनों श्री-स्वामी जी नंगे पैर रहते थे। हजामत नहीं बनवाते थे। जमीन पर सोते थे। हाथ पर रख कर खाना खाते थे। रात में ११ बजे सोकर प्रातः ४ बजे उठ जाते थे। उन दिनों श्री स्वामी जी घोर तप कर रहे थे।

उन्हीं दिनों पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ४०० चार सौं सत्याग्रहियों को लेकर मनमाड़ पहुंचे थे और उन्हें औरङ्गाबाद सत्याग्रह करना था। श्री स्वामी जी महाराज ने उनके साथ आये-सत्याग्रहियों की सेवा—सुश्रुषा में कसर नहीं उठा रखी। देखने वाले श्री स्वामी जी की महत्ता देख कर श्रद्धावनत हो जाते थे।

उन्हीं दिनों महाशय कृष्ण और उनके जत्थे के ७०० सात सौ सत्याग्रहियों पर मुकदमा चल रहा था। उनके जत्थे में रोहतक जिले के बुटाना गांव के सत्याग्रही श्री सुनहरासिंह का वलिदान हो गया था। श्री स्वामी जी मनमाड़ से औरङ्गाबाद गये थे। मैं भी उनके साथ या। जब श्री स्वामी जी औरङ्गावाद स्टेशन से उतर कर जेल की तरफ जा रहे थे तो हजारों मनुष्य सड़क के दोनों ओर खड़े होकर उनके दर्शन कर रहे थ —और कह रहे थे कि "देखो सत्याग्रह जा रहा है" यही सत्याग्रह नवाब हैदराबाद की रियासत में हजारों आदमियों को जेल जाने के लिये भेज रहा है।" जब श्री स्वामी जी जेल पहुंचे तो उनकी महाशय कृष्ण जी और जेल में बन्द प्रमुख व्यक्तियों से घंटों बात हुई। मैं जेल में अनेकों रोहतक के सज्जनों से मिला। श्री स्वामी जी ने महाशय कृष्ण और उनके जत्थे के सत्याग्रहियों का मुकदमा ऐसे ढंग से लड़ा कि सत्याग्रह समाप्त होकर सारे जेल के बन्दी छूट कर घर पहुंच गये। परन्तु निजाम सरकार उस जत्थे को कैद की सजा न सुना सकी।

जेल से छूट कर आये हुए हिसार जिले के मिलकपुर गांव के श्री मातू राम का शरीरान्त मनमाड़ में हो गया। श्री स्वामी जी महाराज ने श्री मातू राम के दाह संस्कार की समुचित व्यवस्था की तथा उनके पारिवारिक जनों को संदेश भेजा।

अगस्त मास में श्री स्वामी जी महाराज, महात्मा गांधी के बुलावे पर मनमाड़ चले गये। वहां से नवाब के साथ समझौता

होनें पर ही लौटे। जब सब सत्याग्रही जेलों से छूटकर मनमाड़ कैम्प से होकर घरों को लौट नही गये तब तक हमें कैम्प छोड़ने की आज्ञा नहीं मिली। सितम्बर मास में हम हैदराबाद से रोहतक लौटे।

स्वर्गवास से कुछ पहले मैंने श्री स्वामी जी महाराज से प्रार्थना की कि मैं उनका जीवन चरित्र लिखना चाहता हूं। "श्री स्वामीजी ने कहा" श्रावण मास में दीनानगर दो महीने के लिये आ जाओ। जो पूछना चाहो, पूछ लेना वहीं बैठ कर लिख लेना।" ●

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

(पं० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी जैकमपुरा गुड़गांव)

श्री स्वामी जी महाराज मेरे गुरु थे। उनका जीवन पवित्र था। वाणी पर पूरा संयम और इन्द्रियों पर दमन। पूरा कन्ट्रोल रखते थे। वह दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य थे।

मनु धर्म शास्त्र में आचार्य के जो गुरु बताये हैं तदनुसार वह वेद और वेदानुकूल धर्म शास्त्र पढ़ने पढ़ाने में प्रवृत्त रहते थे। उन्होंने कई बार वेदचतुष्टय का आद्योपान्त पाठ श्रद्धा से किया था और मंत्र संग्रह में प्रवीण थे।

वैदिक धर्म पर जो प्रश्न किये जा सकते हैं उनके उत्तर सोचते और उपदेशकों प्रचारकों और शास्त्रार्थियों को बताते रहते थे। इस प्रकार पूज्य आचार्य प्रवर सदैव धर्मचर्चा और शंका समाधान में प्रवृत्त रहते थे।

वैदिक धर्म और ऋषि के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। वह

ऋषि जीवनी कथा तन्मय होकर प्रति वर्ष किया करते थे। सहस्रों नर नारी उनके पवित्र जीवन पर अटूट श्रद्धा रखते थे।

प्रत्येक संप्रदाय के बड़े लोग उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनके चरणों में बैठना अपनी शान समझते थे। सर छोटूराम तो उनके अनन्य श्रद्धालु थे। जब स्वामी जी शाही किला लाहौर में शाही कैदी बन कर यातनाओं का सामना कर रहे थे तो सर छोटूराम जी तथा अन्य बड़े लोगों ने इन्हें निर्मुक्त कराने के लिए पूरा जोर लगाया और अन्त में सरकार को मजबूर कर दिया कि वह आर्यों में महान् ईश्वर भक्त नेता को निर्मुक्त कर दे। तब श्री स्वामी जी दीनानगर म्यूनिसिपल कमेटी की सीमा के अन्दर सीमाबद्ध कर दिये गये। पुलिस विभाग ने उन पर पूर्ण विश्वास किया और कभी उन्हें पुलिस स्टेशन पर उपस्थिति के लिए नहीं बुलाया।

वह निर्भीक संन्यासी और सच्चे ईश्वर भक्त थे। ईश्वर पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। तदनुसार उनकी दिनचर्या और सभी कार्य होते थे। आर्य जाति के वह सच्चे सेनानी और धर्म रक्षक थे। हैदराबाद सत्याग्रह का संचालन उनके नेतृत्व में होने के कारण ही आर्यों की विजय पताका लहराई।

महात्मा गांधी जी ने इन्हें गुप्त बन्धुओं के द्वारा सत्याग्रह बन्द करने का संदेश भेजा कि अब स्वयं सेवकों की न्यूनता से आर्य समाज को कठिनाई न हो। पूज्य स्वामी जी ने इसका उत्तर यह दिया कि इतनी शक्ति लगा कर भी हम अपना मनोरथ सिद्ध न कर पाये तो हम अन्य उपायों से स्वसिद्धि प्राप्त करेंगे किन्तु कार्य अधूरा न छोड़ेंगे। सत्य है :—"कार्य वा साधयेयं देहं वा पातयेयं" आर्यों का ध्येय था। जिसे कोई शक्ति पराजित न कर सकती थी। यही सच्चा आर्यत्व है जो हमें पूज्य स्वामी महाराज के सन्निध्य से प्राप्त हुआ।

गुरु निन्दा पाप है। पुनरपि कुछ विद्यार्थी इस दोष के दोषी पाये

आते हैं परन्तु मैंनें आचार्य प्रवर की सतत्स्तुति ही सुनी है। ऐसे महापुरुष मेरे गुरु थे। मेरे से प्रथम मिलन पर पूज्य स्वामी जी महाराज सदैव यही पूछते थे। कितना स्वाध्याय किया है? अमुक प्रश्नों का समाधान क्या सोचा है? कहां कहाँ किस किस विषय पर शास्त्रार्थ किये हैं? स्वास्थ्य का क्या हाल है? ऋण कितना शेष है? आगे का क्या प्रोग्राम है? दयामूर्ति का हम सभी पर वरदहस्त आशीर्वाद देता था, यह स्मरण करके उनके उपकारों का सतशः धन्यवाद है।

श्री स्वामी जी वेदप्रचाराधिष्ठाता थे वह चाहते थे कि प्रचार प्रणाली में परिवर्तन किया जाय। उन्हें आँधी प्रचार और गप्प बाजी से घृणा थी। समय परिपालन के वह विशेष पक्षपाती थे। जितना समय शेष रहा हो उसी को पर्याप्त समझते थे। कुछ कालान्तर जितना समय उनका कम हो जाता था, उतना वह अपनी ओर से अर्थात दुगना समय काट कर शेष कुछ समय बचे तो उतना व्याख्यान दे देते थे अन्यथा व्याख्यान के बिना लौट आते थे।

स्वतन्त्र प्रचार यात्रा में वह बहुत प्रसन्न रहते थे। कभी सभा के बन्धन में रहकर उत्सव नहीं भुक्ताये। प्रचार यात्रा में कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। किसी ने कुछ दे दिया ठीक, नहीं तो फकीर चलता भला। मखदूमपुर में उनकी जेब में केवल दो पैसे शेष थे। मंत्री श्री कालूराम जी को पूछना भी भूल गया। निराहार पैदल यात्रायें करते हुए गन्तव्य स्थान पर पहुंचे। भिक्षा मांगना सन्यासी के लिए आवश्यक समझते थे। लाहौर में दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्यपद पर आसीन होकर भी भिक्षा का अन्न ग्रहण करते थे। श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज का भी ऐसा ही स्वभाव था। दोनों महात्माओं के लिए भिक्षा वृत्ति चलती थी।

श्री स्वामी जी महाराज का अन्तिम जीवन ऋषि दयानन्द जी की भांति गोरक्षा कार्य में लगा है। दोनों से सरकार रुष्ट हो गयी

दोनों की बलि गोरक्षा कार्य का परिणाम थी। महर्षि के गोरक्षा प्रयासों से भारतीय जनोत्थान हुआ तो स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के गोरक्षा प्रयासों से पंजाब, उत्तर प्रदेशादि प्रान्तों में गोहत्या बन्दी की घोषणायें हुईं। दिवंगतात्मा मोधर्मिक के संस्कारों और लोकोपकार के निष्काम कर्मों का अद्भुत संचय साथ लेकर इहलोक से प्रयास कर गईं। उनकी याद यावज्जगत् रहेगी अमरहुतात्मा स्वामी स्वतन्त्रानन्द देह निर्मुक्त होकर ईश्वरीय संरक्षण में पूर्ण स्वतन्त्रपद प्राप्ति के अधिकारी बने। परमात्मा उन जैसे तेजस्वी प्रतापी नेता आर्य समाज को पुनः प्रदान करें।

●

स्वामी स्वतन्त्रानन्द की कुछ संस्मरण घटनाएं

(श्री महाशय भरतसिंह उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, रोहतक)

पूज्य स्वामी जी महाराज एक विचित्र प्रकार के और उच्चकोटि के आर्य संन्यासी थे।

(१) जब नवाब लोहारू ने आर्यसमाज लोहारू के वार्षिकोत्सव पर निकाले जा रहे जुलूस पर एक योजनाबद्ध आक्रमण किया था, तो बेशुमार आर्य भाई और बहनों को चोटें आईं। स्वामी जी महाराज जुलूस की रहनुमाई कर रहे थे। उनके शरीर पर सैकड़ों लाठी आदि हथियार लगे पर अपने स्थान पर खड़े रहे, घायल और जख्मी होकर जब दिल्ली के हस्पताल में आये तो उसके दूसरे दिन ही मैं, श्री चौ० वेदपाल जी सुडाना और चौ० प्रभुदयाल जी, प्रधान आ० स० धामड़ के साथ उनसे मिलने हस्पताल में गये। स्वामी जी महाराज का चेहरा खुश था। एक सच्चे संन्यासी की तरह नवाब के प्रति मन में किसी प्रकार का द्वेष न था। जब चौ० प्रभुदयाल जी ने नवाब को बुरा भला कहना शुरु किया और मारने

मरवाने की धमकी की बाते भी करने लगे तो स्वामी जी महाराज ने अपने जखमों और चोटों के दर्दों को सहते हुये भी मुस्करा कर कहा प्रधान जी आप समाज के प्रधान हैं। हुड्डा होने के नाते हिम्मत वाले भी हैं। हम संन्यासियों का तो यह काम है नहीं, हमारे सामने तो यह बाते भी नहीं करनी चाहियें।

(२) देश के बटवारे के बाद पूज्य स्वामी जी के आदेश से मौजूदा दयानन्द मठ रोहतक को स्थापित किया गया तो एक रोज रात्री को गरमी के मौसम में बड़ के सामने ऊपर बैठे हुये थे। भिन्न भिन्न चर्चायें चलतो रहीं, पुनः बातें लड़कियों के फैशन की चल पड़ी। लड़कियों की दो दो चोटियों की कड़ी आलोचना की, गई तो स्वामी जी महाराज हंस कर कहने लगे बाल ही तो ब्रह्मचारियों ने दो जगह बांध लिये तो क्या हुआ आप के यहाँ तो रामायण काल में त्रिजटाये भी होती थी अभी तो एक जटा न्यून ही तो हैं।

(३) देश के विभाजन के बाद पूज्य स्वामी जी महाराज जब रोहतक आये तो एकान्त में बैठे हुये राजनीति की बातें होने लगीं। स्वामी जी महाराज फरमाने लगे कि अब आप के हरयाणे में जमीदार लोग की बात नहीं चलेगी। आप लोगों ने यदि जीवित रहना है तो हरिजनों को अपनाओ। उन को प्रत्येक प्रकार की सुविधाएं दो। उन से भाई चारे का सम्बन्ध स्थापित करो। अब समय आ गया है कि जब जाटों, अहीरों, गूजरों, राजपूतों, सैनियों, और रोड़ आदि खेती पेशा बिरादरयों ने आपस में जात पात के बन्धन तोड़ कर रिश्ते नाते शुरु कर देने चाहियें इसी में इन सब का कल्याण है। उसी दिन सायंकाल, मैं उनके साथ था, महाराज स्वयं चौ० श्रीचन्द और चौ० माडूसिंह की कोठी पर गये। और जमींदार लोग को तोड़ने और हरिजनों को अपनाने और कांग्रेस में सम्मिलित होने का प्रस्ताव उनके सामने रखा और संभवतः उसी प्रस्ताव और स्वामी जी महाराज की इच्छा को पूरा करने के लिए

ही शीघ्र ही हरयाणा में जमींदार लोग को भंग कर दिया गया।

(४) एक दिन दयानन्द मठ में बैठे बैठे विभाजन के बाद पंजाबी भाइयों के बसने की बातें हो रही थीं। स्वामी जी महाराज स्वयं जिला लुधियाना के सिक्ख परिवार में जन्म लेने के नाते पंजाब के इतिहास से बहुत परिचित थे और एक एक जिले के लोगों के स्वभाव, वेषभूषा और आदतों को जानते थे। झंग के लोगों का रोहतक जिले में बसाने का निर्णय हो चुका था। फरमाने लगे झंग की बहिनों से कपड़े धोने घर को साफ रखने आदि की कुछ बातें तो उन से सीखनी हैं। और नलों, नहरों और रहट आदि पर नंगा नहाना तहमद आदि बाँधना उनका छुड़ाना है।

रोग की अन्तिम अवस्था में नई देहली में हम उनको देखने गये हमने पूछा अब तबियत कैसी है महाराज श्री स्वामी जी महाराज ने अपने सरल स्वभाव से हंसते हुए कहा तबियत तो चलती ही रहती है। आप गांव की बातें बताओ क्या हाल है। अनुमान लगाओ कि जिस व्यक्ति की डाक्ट्रों ने केन्सर की अवस्था बता दी है और दिल्ली में इलाज न करा कर बम्बई में इलाज कराने की सम्मति दी है मौत सामने आ रही हो, परन्तु मृत्यु से निर्भीक थे।

●

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की कुछ संस्मरण घटनाएँ

(जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, देहली)

१. सन् १९२७ ई० में लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। दयानन्दोपदेशक विद्यालय की एक दीवार के साथ लगते मकान में भाई परमानन्द जी रहते थे और उनके नीचे तीन तरफ मुसलमान सिरकी वालों की झौंपड़ियां थीं। स्वामी जी ने भाई जी की रक्षा के लिये प्रत्येक रात्रि को दीवार पर से चढ़ा कर विद्यालय के दो

विद्यार्थियों को लगाया। मैं भी वहीं विद्यालय में ठहरा हुआ था पहिले ही दित एक विद्यार्थी के साथ मेरी ड्यूटी भी लगी। इसी प्रकार रावी रोड पर पं० चमूपति जी एक सरदार के मकान की ऊपरी मंजिल में रहते थे। लाहौर में कर्फ्यू आर्डर लगा था। स्वामी जी ने मुझे भी साथ लिया और मकानों की छाया में होते हुए पंडित जी के पास पहुंचे। नीचे सरदार जी नें कहा कि स्वामी जी! मेरे पास यह राइफल और २५० गोलियों की पेटी रखी हुई है। जब तक गोलियां चलती रहेंगी तब तक आप पंडित जी की रक्षा की चिन्ता न करें।

२. यूरोप के गत दूसरे युद्ध में हिटलर का बड़ा आतंक था। इधर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने जापान के साथ मिलकर भारत देश स्वतन्त्र कराने के लिए भारत में अंग्रेजी सेनाओं पर आक्रमण किया। उनमें भी भारतीय सैनिक थे और नेताजी की सेना में भी भारतीय सैनिक थे। भारत की दशा डगमग हो रही थी, स्वामीजी नें हरयाणा का दौरा किया और ३० दिन में ३२ गांवों में जाकर ३७ भाषण दिये। स्वामी जी नें हरयाणा के सैनिकों को उनके परिवारों से कहलवाया कि अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिक नेता जी के भारतीय सैनिकों पर गोली न चलायें सी० आई० डी० की रिपोर्ट पर स्वामी जी को गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव से गिरफ्तार कर के लाहौर के शाही किले में बन्द कर दिया गया। स्वामी जी अपने आसन पर ही सोते थे। एक दिन उनसे जेलर ने कहा कि आप अपना बिस्तर मंगवालो। उत्तर मिला मुझे बिस्तर की आवश्यकता नहीं। जेलर के बहुत कहने पर स्वामी जी ने कहा कि महाशय कृष्ण जी से मंगवा देवें। जेलर ने डर कर कहा यह नहीं होगा। कल ही पता चल जायेगा कि स्वामी जी यहाँ जेल में बन्द हैं। कोई दूसरा नाम बताइये। स्वामी जी ने कहा कि यदि आप आग्रह ही करते हैं तो चौ० छोटूराम जी से मंगवा लीजिए। जेलर

ने कानो पर हाथ लगा कर कहा कि स्वामी जी वह पंजाब के वज़ीर हैं। वहां से हम नहीं मंगवा सकते। चूंकि उसी सम्बन्ध में मेरे भी वारण्ट थे। स्वामी जी ने शाही किले में बन्द रहते भी किसी ढंग से मुझे सूचित कर दिया कि तुम्हारा आपरेशन हो चुका है अतः पंजाब में न घुसना। अन्यथा कष्टों को न सह सकने से तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।

३. जब मैं पंजाब की शास्त्री परीक्षा देने लाहौर गया था तब उपदेशक विद्यालय में ही ठहरा। मैंने पंचीकरण सिद्धान्त के बारे में विद्यालय के विद्वान् अध्यापकों से जिज्ञासा की। एक विद्वान् ने कहा कि अब क्या हो सकता है? मैं उठ कर स्वामी जी महाराज की सेवा में गया। उन्होंने १५ मिनिट में ही मुझे न्याय और वेदान्त दर्शनों द्वारा बहुत अच्छी प्रकार से समझा दिया। मैं तुरन्त वापस आया और उन विद्वानों को बतला दिया। तब एक वेदज्ञ विद्वान् ने कहा कि स्वामी जी दर्शनों के भी ऐसे विद्वान् हैं। मैंने कहा कि मैं उत्प्रक्ष प्रमाण हूं।

४. अमृतसर खालसा कालिज के प्रिंसिपल ने स्वामी जी के इतिहास सिख मत पर व्याख्यान कराये। पहिले दिन के व्याख्यान के पश्चात् एक प्रोफेसर ने कुछ शङ्का करनी चाही। प्रिंसिपल ने कहा कि ७ दिन तक स्वामी जी के भाषण सुनें। उसके पश्चात् शङ्का का अवसर दिया जायेगा। ७ दिन के बाद किसी ने भी शङ्का नहीं की। सिख-इतिहास और मत के स्वामी जी सबसे प्रामाणिक विद्वान् माने जाते थे।

५. कांग्रेस आन्दोलन में जब पंजाब के अनेक नेताओं को जेल में डाल दिया गया तब स्वामी ने आन्दोलन संभाला और राजनीतिक प्रचार करते हुए जि० मुजफ्फरनगर तक पहुंचे थे। सरदार झण्डा-सिंह की अदालत में उन पर मुकदमा चला।

६. स्वामी जी ने एक बार बताया कि सी० आई० डी० तुम्हें

पूछे तो ठीक सूचना देनी चाहिए। अन्यथा और बाधा पड़ सकती है।

७. स्वामीजी वेद स्मृति दर्शन और सूत्रग्रन्थों के बड़े भारी विद्वान् थे। प्रकृति से गंभीर थे, वहाँ हंसमुख भी थे। हरयाणाके भ्रमण में उस से पूछा कि जाट बड़े हैं या अहीर। स्वामी जी ने कहा कि रेवाड़ी में अहीर बड़े और रोहतक में जाट बड़े। जहाँ जिसका जोर होता है वहां वही बड़ा होता है। यह कह कर स्वामी जी इतने हँसे कि उनका भारी भरकम शरीर सारा हिलने लगा।

८. मोगा में प्रचार के लिए गए, उनके साथ दूसरे स्वामी विद्यानन्द सरस्वती थे। व्याख्यान का समय हो गया। श्रोता कोई नहीं पहुंचा। सामने मन्त्री जी पंसारी की चीजें बेच रहे थे। स्वामी जी ने खड़े हो कर व्याख्यान देना आरम्भ किया और स्वामी विद्यानन्द जी अकेले सुनने लगे। स्वामी विद्यानन्द जी भी बहुत बड़े विद्वान् थे। मन्त्री जी ने यह देख कर झट पट दुकान बन्द की और दौड़े आये। अगले दिन से समय से पहिले ही सुनने वाले पहुंचने लगे।

९. स्वामी जी जैलदार किशन सिंह की प्रायः बातें सुनाते रहते थे। स्वामी जी का जन्म स्थान मोही है जो लुधियाना से १३ मील पर है। मोही गांव राजस्थान (राजपूताना) चित्तौड़ गढ़ के पास से कभी चल कर यहां बस गया था। इस गांव का नाम भी पुराना मोही ही रखा। मैं जैलदार किशन सिंह के दर्शन करने मोही गया। उस समय जैलदार साहिब की आयु अनुमान ९० वर्ष की थी। मैंने उन्हें बताया कि मै स्वामी जी का शिष्य आपके दर्शन करने आया हूं। जैलदार साहिब ऊपर चौबारे में रहते थे। यह सुनते ही उठे और छातीसे लगाकर मुझे मिले। अन्य बातों में कहा कि हमारे गाव में यदि झगड़ा हो जाता था, तो हम स्वामी जी की सेवा में पहुंचते और जो निर्णय वह देते। गांव सर्वसम्मति से उसको स्वीकार कर लेता था। स्वामी जी के बड़े भाई नौरंगसिंह कोल्हापुर राज के पहलवान थे। छोटे भाई सरदार बलवन्तसिंह अफरीका में थे।

१०. रुग्णावस्था में जब वह देहली ठहरे तो मैं प्रति दिन गन्ने का रस और गाय की छाछ ले जाता था। स्वामी ईशानन्द जी के अनुनय पर स्वामी जी ने कुछ घटनाएं बताईं। प्रति दिन उनका संक्षेप करके मैं लिख देता था और उनको दीनानगर दयानन्द मठ में स्वामी सर्वानन्द जी को भेजा।

११. स्वामी जी ने एक घटना सुनाई कि रेल यात्रा में हरयाणा का एक आर्यसमाजी जाट भी उसी डिब्बे में था। तब एक मुसलमान ने उसके भोजन की पोटली को हाथ लगा दिया। आर्यसमाजी ने बिगड़ कर कहा क्यों हाथ लगाया। पास बैठे लोगों ने मुसलमान को कहा कि तुम इसको आठ आने दे दो। भोजन वाले ने उससे आठ आने लेकर स्वयं भोजन खाने लगा। मुसलमान ने कहा कि भोजन की पोटली मेरी हो गई थी, तुम क्यों खाते हो ? आर्यसमाजी ने कहा कि यह तो तुम्हारे हाथ लगाने का तुम्हें दण्ड मिला है और भोजन खा लिया। स्वामी जी ने उससे पूछा चौधरी ! यह बात कहां से सीखी—उसने कहा कि आप से शिक्षा मिली है।

१२. स्वामी जी ने जि० हिसार में शुद्धि की। उनमें मुंशी काले खां और उनके चार भाई भी थे। शुद्ध करके स्वामी जी ने पूछा कि तुम्हारे रिश्ते की क्या व्यवस्था करोगे। मुंशी जी ने उत्तर दिया कि हम तो पहिले भी किसी के दरवाजे पर मौड़ बांध कर नहीं जाते थे। मुसलमानों की स्त्रियों को लाकर शुद्ध करके विवाह करते रहेंगे। आप चिन्ता न कीजिये। इनका नाम मुंशी कृष्णचन्द्र, स्वामी जी ने दे दिया था।

पूज्य स्वामी जी से हमारा सम्पर्क सन् २२ से हो चुका था। हमारे जीवन पर उनके उपदेशों का भारी प्रभाव पड़ा। हम निश्चय से कह सकते हैं कि उन जैसे विद्वान्, बलवान, त्यागी, तपस्वी, कर्मठ, नियमों के अटल और व्यावहारिक उपदेशक आर्य सन्यासियों में ढूंढे से भी नहीं मिल सकते।●

चित्र परिचय

कवर पृष्ठ १—महा बलवान स्वामी जी, आचार्य दयानन्दोपदेशक विद्यालय लाहौर।

कवर पृष्ठ २—रोग की अन्तिम अवस्था में—ला० नारायणदत्त जो ठेकेदार की नई देहली की कोठी पर अन्य सज्जनों के साथ महाशय कृष्ण जी, महात्मा आनन्द भिक्षुजी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, स्वामी ईशानन्द जी, जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, श्रीकृष्णदत्त जी।

कवर पृष्ठ ३—योगाभ्यास के पश्चात् स्वामी जी।

कवर पृष्ठ ४—हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के सेनानी स्वामी जी।

अन्दर पृष्ठ ३—वेद का स्वाध्याय करते हुए स्वामी जी।

अन्दर पृष्ठ ४—वेदोपदेश देते हुए स्वामी जी।

अन्दर पृष्ठ ४७—लोहारू का वह स्थान जहां नवाबी गुण्डों ने स्वामी जी पर हथियारों से आक्रमण किया, स्वामी जी अडिग रहे, तब घबड़ा कर आक्रमणकारी भाग गये।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ— आर्य बलिदानों की गाथा	मूल्य	४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या	—पं० चमूपति एम. ए.	३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या	,, ,,	३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें	,, ,,	०-२५
५. Principles of Arya samaj	,, ,,	१-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand	,, ,,	१-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास		२-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि		१-००
९. वेदाविर्भाव	—आर्यमर्यादा का विशेषांक	०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय	,, ,, ,,	०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय	—पं० मदनमोहन विद्यासागर	१-००
१२. व्यवहारभानु	—महर्षि स्वामी दयानन्द	०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश—	,, ,,	०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand	By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A.	२-००
१५. Subject Matter of the Vedas	By S. Bhoomanad	१-००
१६. Enchanted Island	By Swami Staya Parkashanand	१-००
१७. Cow Protection	By Swami Daya Nand	०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है	आर्यमर्यादा का विशेषांक	२-००
१९. मूर्तिपूजा निषेध	,, ,,	०-५०

२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफ़िर प्रथम भाग—पं०
लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला
आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें
—प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी
जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द
सरस्वती की जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प " " " ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य " " " ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग " " " ०-७५
३७. वैदिक विवाह " " " ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफ़िर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५

४३. वेद विमर्श	—पं० भगवद्दत्त वेदालंकार	२-००
४४. वेद विमर्श	—पं० वेदव्रत शास्त्री	२-००
४५. आसनों के व्यायाम	,, ,, ,,	१-००
४६. महर्षि जीवन गाथा	—स्वामी वेदानन्द वेदवागीश	२-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	१-००
४८. वीर भूमि हरयाणा	,, ,, ,,	४-००
४९. चोटी क्यों रखें	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	०-५०
५०. हमारा फाजिल्का	—श्री योगेन्द्रपाल	१-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	०-५०
५२. जापान यात्रा	,, ,, ,,	०-७५
५३. भोजन	,, ,, ,,	०-७०
५४. ऋषि रहस्य	—पं० भगवद्दत्त वेदालंकार	२-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय		१-२५
५६. मेरा धर्म	—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत	,, ,, ,,	५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य	—इन्द्र विद्या वाचस्पति	२-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन	—डा० रामप्रकाश	१-३५
६०. वैदिक पथ	—पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण	२-००
६५. वैदिक प्रवचन	—पं० जगत्कुमार शास्त्री	२-२५
६१. ज्ञानदीप	,, ,, ,,	२-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय		०-५०

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन,
जालन्धर (४२५०) टेलीफोन

,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)

,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५७४)

इस संस्मरणांक का मूल्य १ रु० ५० पैसे।



आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिये "जगदेवसिंह सिद्धान्ती" शास्त्री द्वारा **सैनी प्रिंटर्स**,
पहाड़ी धीरज देहली ६ मे मुद्रित और १५ हनुमान् रोड नई दिल्ली १ से प्रकाशित